

चतुर्थ अध्याय

महिला आत्मकथाओं में स्त्री-दृष्टि का परिप्रेक्ष्य

(क) हिन्दी महिला आत्मकथाएँ

सबकी अनुभूति एक जैसी नहीं हो सकती है। अनुभूतियों का वैविध्यपूर्ण जगत इस बात का संकेत है कि मनुष्य एक जैसा नहीं होता है। प्रत्येक अनुभूति का अपना अलग आधार है। पुरुष और स्त्री की अनुभूति में भी भिन्नता पायी जाती है। अनुभूति की व्याख्या करते हुए महादेवी जी ने लिखा है— “जहाँ तक अनुभूति का प्रश्न है, वह तो स्थूल और गोचर जगत में भी सामान्य नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि फूल को ग्रहण कर ले, यह स्वाभाविक है, परन्तु सबके अन्तर्गत में अनुभूति एक सी स्थिति नहीं पा सकती। अपने संस्कार रूचि के अनुसार कोई फूल से तादात्म्य करके भावतन्मय हो सकेगा, कोई उदासीन दर्शक मात्र रह जाएगा। स्थूल जगत से सम्पर्क का रूप भी अनुभूति की मात्रा निश्चित कर सकता है जिसने अंगारे उठा-उठाकर हाथ को कठोर कर लिया है, उसकी उंगलियाँ अंगारे पर पड़ कर भी जलने की तीव्र अनुभूति नहीं उत्पन्न करेंगी, पर जिसका हाथ अचानक अंगारे पर पड़ गया है, उसे छाले का तीव्र गर्मानुभव करना पड़ेगा। जिसने कांटों पर लेटने का अभ्यास कर लिया है, उसके शरीर में अनेक कांटों का स्पर्श तीव्र व्यथा नहीं उत्पन्न करता, पर जो चलते-चलते अचानक कांटों पर पैर रख देता है, उसके लिए एक कांटों पर पैर रख देता है उसके लिए एक काँटा ही तीव्र दुखानुभूति का कारण बन जाता है।”¹

सीमोन द बोउवार ‘द सेकेण्ड सेक्स’ की भूमिका में कहती हैं कि— “अब तक औरत के बारे में पुरुष ने जो कुछ भी लिखा है, उस पूरे पर शक किया जाना चाहिए

क्योंकि लिखने वाला न्यायाधीश और अपराधी दोनों ही है।² कुछ इसी तरह यह भी है कि— “आज भी पूँजीवाद द्वारा सुझाए गए छद्म मुक्ति के रास्ते खाते—पीते घरों की मुट्ठी—भर स्त्रियों का ही कल्याण कर पाए हैं, ये ऐसी स्त्रियाँ हैं जो अच्छी उपभोक्ता भी हैं। जिनकी आय के स्रोत उनके रख—रखाव पर ही ज्यादातर सूख जाते हैं। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ, मजदूर स्त्रियाँ इन सबकी मुक्ति पूँजीवाद के द्वारा दिये गये कुछ छूट और सुविधाओं से सम्भव नहीं, इनकी मुक्ति का रास्ता पूँजीवाद से संघर्ष में ही निकल सकता है।³

स्त्री के मनुष्यत्व को स्वीकारना आज मानव जाति का सबसे अहम् सवाल बन गया है। स्त्री विमर्श स्त्री अस्मिता की लड़ाई है और आधी दुनिया को मनुष्य को दर्जा दिलाने की लड़ाई है। स्त्री का व्यक्ति के रूप में प्रकाशित हो सकना, अपनी सम्पूर्णता में जी सकना, अपनी प्राकृतिक एवं व्यक्तिगत विशेषताओं को आत्मसात कर प्रकाशित करना, मनुष्य जाति के बचे रहने की शर्त है। पुरुष समाज में पुरुष के बनाए हुए नियमों के, उसके वर्चस्व से, स्त्री की निरीहता से विवशता से शोषण के बन्धन से मुक्ति के सम्बंध में सोच—विचार करना स्त्री विमर्श की विषयवस्तु है, जिनको आत्मकथाओं में बखूबी उकेरा गया है। स्त्री लेखन स्त्री को किसी पद पर प्रतिष्ठित करने का नहीं अपितु जागृत करने का प्रयास है। वह स्त्री को पुरुष बनाने का नहीं अपितु स्त्री रूप में ही अपने विकास के अवसरों की तलाश का प्रयास है। “स्त्री विमर्श का मूल उद्देश्य महान रचना करने या श्रेष्ठ चरित्रों को गढ़ने की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। इसका मूल उद्देश्य स्त्री मुक्ति के संदर्भ में अधिकाधिक अवसर तलाश करने की साहित्यिक प्रक्रिया से है। यह मुक्ति उसकी वैयक्तिक भी है और सामाजिक भी शारीरिक भी है और यौनिक भी।⁴ स्त्री स्वतंत्र व्यक्तित्व विकास में विवाह व्यवस्था को भी बाधक मानकर उसके प्रति अनारस्था व्यक्त करने लगी है। वह केवल बच्चा पैदा करने तक ही सीमित नहीं रहना चाहती जिससे कि उनका जीवन

शोषण से भर जाता है। इस संदर्भ में मृदुला गर्ग का विचार उल्लेखनीय है— “यदि पुरुष मानसिकता की शोषक नीतियों पर लगाम न लगायी गयी तो हो सकता है कि उसके विरोध में एक दिन स्त्री संतानोत्पत्ति से भी इन्कार कर दें।”⁵

साहित्य कोई भी हो चाहे वह हिन्दी साहित्य हो या अंग्रेजी साहित्य, नारी सभी साहित्य के केन्द्र में होती है। यदि नारी को हटा दिया जाये तो किसी भी साहित्य का सृजन करना कठिन हो जायेगा। स्त्री जीवन की गहराइयों से जितनी वाकिफ होती है, उतना शायद कोई और नहीं। यही कारण है कि साहित्य लेखन की दुनिया में स्त्री अनुभूतियों को उकेरने का सबसे प्रामाणिक काम लेखिकाओं ने ही किया है। हिन्दी साहित्य में ऐसी गंभीर लेखिकाओं की कमी नहीं है, जिन्होंने अपनी संवेदनाओं को विस्तृत साहित्य के रूप में अभिव्यक्त किया और जब आत्मकथा विधा में अभिव्यक्ति हो तो प्रामाणिकता व अन्य सवालों के जवाब स्वयं मिल जाते हैं। इसीलिए ‘आत्मकथा’ से अधिक साहित्य की कोई अन्य विधा उतनी प्रामाणिक व अनुभूतिगत सच्चाई कहने की शक्ति नहीं रखती जितना की यह।

आत्मकथा अपने माध्यम से अपने साथ सबकी कथा होती है। आत्मकथा हिन्दी साहित्य की सबसे लोकतांत्रिक विधा है। यह ऐसी विधा है जिसे हर कोई अपनी तरह लिख सकता है। इसमें हम जीवन के सभी क्षण, सुख-दुख को तय करने वाली सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा सामंती व पूँजीवादी ताकतों और उनसे अपनी सत्ता के सम्बंधों की प्रकृति को अभिव्यंजित करते हैं, साथ ही साथ इन सम्बंधों को संवेदनात्मक धरातल पर विवेक की कसौटी पर कसते भी हैं। आत्मकथा को समाज के प्रति जवाबदेह होना पड़ता है। यह अन्तरंग का निश्चल उद्घाटन है। मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक संदर्भों से जुड़े होने के कारण इसे हम जिन्दगी के आलोचनात्मक दस्तावेज के रूप में भी स्वीकार कर सकते हैं।

आत्मकथा अन्तः और बाह्य जगत के बीच के सम्बंधों, सम्बंधों के सत्य के अनुभव, अभिव्यक्ति और अन्वेषण की सशक्त विधा है। लेखक का निर्व्यक्तिक होना इसकी प्रथम अनिवार्य शर्त है। इसकी बुनियाद आत्ममंथन, आत्मालोचन और आत्मान्वेषण पर आधारित है। ऑडेन ने आत्मकथा को 'सच्चा और गम्भीर आत्मपरीक्षण', प्रेमचंद ने 'आत्मा के संशय और संघर्ष' के रूप में, नागार्जुन ने 'सत्य का संस्कार', अज्ञेय ने 'जो मेरा है वही ममेतर है' प्रमुख गुण स्वीकार किया है। जिसमें हर तरफ से वैचारिक और नैतिक साहस की जरूरत होती है। तुलसीदास ने इसे ही 'धरम सनेह उभय मति घेरी' कहा है। इस प्रकार आत्मकथा में लेखक स्रष्टा एवं सामग्री दोनों हैं।

अर्चना वर्मा का कथन है कि— "सत्य है कि आत्मकथा उन लोगों की अभिव्यक्ति का सीधा औजार बन चुकी है जो अभी तक हाशिए पर रहते आए हैं और स्वयं अपने इतिहास से भी अपरिचित हैं। इतिहास में दाखिल होने के लिए भाषा में अंकित होना जरूरी है। किसी भी इच्छित और आयोजित परिवर्तन के लिए इतिहास के प्रति जागरूकता और नियति के लिए चुनौती स्वयं अनिवार्य हो जाती है। जो अपना इतिहास आज रचना शुरू कर रहे हैं उनके लिए सबसे सुगम और शीघ्र तरीका स्वयं अपने जीवन को 'कथंत' और 'पठंत' में बदलना है। इस संदर्भ में आत्मकथा, अभिव्यक्ति के एक साहित्यिक प्रकार की अपेक्षा राजनीतिक सामाजिक दस्तावेज के रूप में अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।"⁶

कुसुम अंसल जी के अनुसार— "आत्मकथा स्मृतियों, अनुभूतियों, अभिप्रेत प्रयोजनों का कच्चा चिट्ठा होती है जिन्हें हम अपने बीते हुए समय के पुराने खजाने से निकालकर कागज़ के नये-नकोर पन्नों पर उकेरते हैं या उसे एक ज़िन्दगी की तरह पुनर्वासित करते हैं..... बसाते हैं। आत्मकथा लेखक की पूर्ण स्वीकृति की एक रचना है, जिसमें वह अपने 'मैं' और जीवन की मध्यस्थता के बीच रहता है।"⁷ अपने को उद्घाटित करना बड़ा ही चुनौती पूर्ण होता है। यह तलवार की तीखी धार पर

चलने के समान है। यह किसी एक व्यक्ति के अकेले जीवन की कहानी नहीं होती, केवल लिखता ही अकेला है। यह समूचे समाज, परिवेश, उस समय के अन्तर्विरोधों, गतिरोधों, लालसाओं, आकांक्षाओं का एक संकलन होता है। उसके समय के समाज की हकीकत होती है। इस संदर्भ में लेखिका ममता कालिया का कहना है कि— “आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ-साथ आत्मसजगता का रेखांकन पिछले पचास वर्षों में महिला-लेखन का केन्द्र बिन्दु रहा है।”⁸ स्त्रियों की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति के यथार्थ को उभारने वाले और इस स्थिति के प्रतिवाद, प्रतिकार और इसके विरुद्ध आवाज उठाने वाले स्त्री-रचनाकारों का लेखन उनकी समस्याओं को उभारने में अधिक सफल रहा है। वह आज संघर्ष करके नई संभावनाओं तथा नये प्रयोगों के प्रस्फोट की ज़मीन तैयार कर रही है और आगे की यात्रा की नई राह की भी खोज कर रही है। स्वतंत्रता और अस्मिता की जरूरत को यदि मुख्य माना जाएगा तो स्वतंत्रता की पहली अनिवार्यता होगी आत्म सजगता और दायित्वबोध। स्वतंत्रता जीवन में मिले या पन्नों पर उसका अहसास कराया जाये। इस तरह आत्मसजग व्यक्ति अपना अधिकार स्वयं खोज लेता है।

किसी भी राष्ट्र की सामाजिक चेतना मानव समाज में अभिव्यक्त परिवर्तनशील और देश की पहचान होती है। आज के उपभोक्तावादी संस्कृति के इस दौर में एक ओर स्त्री की स्थिति जहाँ मजबूत होती दिखायी देती है वहीं दूसरी ओर कमज़ोर भी हुई है। धन कमाने की इच्छा तो दूसरी तरफ बन्द होते पारम्परिक उद्योग धन्धों में स्त्री को सबसे पहले निकाल दिया जाता है। विज्ञापन, मॉडलिंग, सौन्दर्य प्रतियोगिता, बालविवाह, अशिक्षा, कुपोषण, मानसिक और शारीरिक हिंसा आदि किसी न किसी रूप में महिलाओं के मनोवैज्ञानिक पतन की प्रवृत्ति को उभारते हैं। पुरुषसत्तात्मक भारतीय समाज में स्त्री आंदोलन, मानवाधिकार और संविधान के द्वारा स्त्री की स्थिति में कुछ सुधार तो हुए लेकिन स्त्री और पुरुष के भेद को नहीं मिटाया जा सकता है ? पुरुष

लगातार अर्थ और सेक्स के आधार पर स्त्री को मात देता रहा है। आज अपने अस्मिता को नारी नये संस्कारों में तलाशने का अर्थ देख रही है। समाज में हो रहे बदलाव स्त्री को आर्थिक, बौद्धिक दृष्टि से आत्म निर्भर एवं जागरूक बना रहे हैं। प्रभा खेतान का कहना है कि— “आज हमें सोचना है कि हम अपनी अस्मिता को पुनः कैसे परिभाषित करें ? कैसे अपनी ओर अपने समाज की रूपरेखा तैयार करें ? हमारे सामने पहले से कोई संयुक्त आदर्श मौजूद नहीं है। अतः आज स्त्री का मसीहा स्त्री खुद है।”⁹

इस प्रकार अनेक स्त्री लेखिकाओं जैसे चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, शशिप्रभा, तसलीमा नसरीन, महाश्वेता देवी, ऊषा प्रियवंदा, मन्नू भण्डारी, शिवानी, सुधा अरोड़ा, ममता कालिया, गीताश्री आदि ने स्त्री को केवल देहवाद के संकीर्ण मानसिकता के दायरे को नकारा है जो उन्मुक्त भोग का समर्थन कर अपनी आत्मकथाओं में आधुनिक स्त्री के स्वरूप को गढ़ा है। महिलाओं की स्थिति का यथार्थपरक व विश्लेषणात्मक विवेचन महिला रचनाकारों ने वास्तविकता से किया है। नारी के सबला रूप का प्रतिपादन करती ये लेखिकाएं उनके व्यक्तित्व के हर पहलू पर हमारा ध्यान दिलाती हैं। प्रभाकर माचवे का कहना है कि— “नारी स्वतंत्रता के कारण वह पढ़ने लिखने और नौकरी करने लगी। ऐसी नारी पत्नी के रूप में पुरुष के लिए बहुत लाभदायक होती है। वह घरेलू रूप से बर्तन धोने खाना बनाने से लेकर बच्चे पालने तक के सारे काम करती है और महीने के अन्त में स्वचालित मशीन की तरह निश्चित रकम भी लाकर देती है।”¹⁰ ज्ञान के बड़े क्षितिज से अपने को जोड़ना आत्म-सम्पन्नता के प्रति जागृत होना ही लेखक की आत्म चिन्ता का स्वरूप है, और समाजोन्मुखता का भी। जहाँ तक स्त्री का प्रश्न है उसके सामने की (जब वह लेखन में आ गई है) चुनौती का यही रूप है कि वह अपने को अधिक से अधिक बुद्धि सम्पन्न और जानकार बनाए ताकि साहित्य में जो उसके द्वारा छनकर आये वह अर्थवान व नवीन हो। स्त्री की यह चिन्ता आत्मनिर्भरता, आत्मसजगता के लिए होनी चाहिए न कि

सामाजिक स्थिति के अभिशाप को एक बचाव की तरह इस्तेमाल करके करुणा बटोरने की। कहना न होगा कि आत्मनिर्भर होने पर, सामाजिक स्तर पर उसकी भूमिका स्वतः बदल जाती है क्योंकि जो ढाँचा उसके पराधीन होने की वास्तविकता पर खड़ा है वह स्वतः ढह जाता है और वह इन मर्यादाओं को लॉघ जाती है जो एक पराधीन मानसिकता के कारण सदा पनपता रहा है। यह अतिक्रमण ही उनकी आत्मकथाओं में दिखायी देता है।

स्त्री दृष्टि ने महसूस किया कि समानता की अवधारणा को व्यापक बनाना होगा ताकि किसी भी ढाँचे की असमानता को चिन्हित करके मिटाया जा सके। वे यह स्वीकार करती हैं कि मेरी दासता की जड़ परिवार है और यह भी कहा कि परिवार के अन्दर स्त्री सर्वहारा की तरह होती है और पुरुष पूँजीपति की तरह। वे इस निष्कर्ष पर पहुँच चुकी है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के खात्मे के साथ ही, परिवार का आधार कमजोर हो जाएगा तभी नारी मुक्ति की संभावनाओं के द्वार खुल जाएंगे। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था पर आधारित पुरुष प्रधान संस्थाओं और आर्थिक सामाजिक जगत में उनके वर्चस्व के कारण स्त्री अधीनस्थ स्थिति में रहने को बाध्य है। सत्ता की भाषा और संस्कृति के पुरुष प्रधान होने से पुरुषों के अनुभवों को ही प्रधानता मिली है, इसी कारण आज की महिला आत्मकथाकार उपनिवेश के खिलाफ संघर्ष कर रही हैं, यही उनका आत्म संघर्ष भी है जिसे आत्मकथ्य की संरचना में ढाल रही हैं। “स्त्री मुक्ति कामना से छटपटा रही है, उसका प्रयास भी यही है लेकिन उपनिवेश के वर्चस्व से उसका मनोजगत आज भी आक्रांत है।”¹¹ उनका साहित्य वस्तुतः स्त्री की अनुभूति का साहित्य है। यह ऐसी अनुभूतियाँ हैं जो अभी तक दबी हुई थी, दमित थीं, उत्पीडित थीं। वह इसी के माध्यम से अपने हितों एवं राजनीति की पक्षधरता करती है।

महिला आत्मकथाकारों ने स्त्री के घर के भीतर और बाहर दोनों मोर्चों पर महत्व को रेखांकित किया है। उनकी सारी कथा व व्यथा सामाजिक विकास की प्रक्रिया से

जुड़ी होती है। वे नारी की शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन और उसकी निर्णय क्षमता को भी उद्घाटित करती हैं। स्त्री चिंतन में स्त्रियाँ अपने अस्तित्व, अधिकार, अस्मिता, स्वाधीनता, स्वावलंबन, समानता, सजगता और आर्थिक स्वतंत्रता ही चाहती हैं इसके अलावा उन्हें कुछ भी स्वीकार नहीं है।

21वीं सदी में हिन्दी में अनेक महिलाओं द्वारा रचित आत्मकथायें उपलब्ध होती हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख आत्मकथाओं पर हम यहाँ चर्चा करेंगे। स्त्री को मात्र देह, उसकी शक्ति सौन्दर्य और उसकी मुक्ति वर्जना रहित मन को मानते हुए लेखक स्त्री आत्मकथा की परिभाषा गढ़ता है। “स्त्री की हर आत्मकथा अपनी आत्मकथाओं की ऐसी दास्तान है जो घर-घर में घटित होती है। पुरुषों की आत्मकथाएँ उनके निजी संघर्षों की विजय गाथाएँ हैं..... मगर स्त्री की आत्मकथा समाज और परिवार की उन भीतरी सच्चाइयों से साक्षात्कार है जिनकी चुभन जूते की कील की तरह सिर्फ पहनने वाला ही जानता है।”¹² स्त्री अधिकारों की एक पक्षधर महिला का कथन है— “स्त्री उत्पीड़न, शोषण की त्रासदी क्या होती है, यह एक महिला ही समझ सकती है।”¹³ स्वार्थ, काम और उत्तेजना के पलों में आदर्श धरा का धरा रह जाता है।

हिन्दी में कुछ प्रतिष्ठित लेखिकाएँ हैं, जैसे— अमृता प्रीतम (रसीदी टिकट-1976), शिवानी (सुनहु तात यह अकथ कहानी-1999), पदमा सचदेव (बूँद बावड़ी-1999), रमणिका गुप्ता (हादसे-2005), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या-2007), मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै-2002, गुड़िया भीतर गुड़िया-2008), सुशीला टाकभौरे (एक अनपढ़ कहानी), मन्नू भण्डारी (एक कहानी यह भी-2007), कौशल्या वैसंत्री (दोहरा अभिशाप-1972), कृष्णा अग्निहोत्री (लगता नहीं है दिल मेरा-1997), सुशीला टाकभौरे (शिकंजे का दर्द-2012), चन्द्रकिरण सोनरेक्सा (पिंजरे की मैना-2008, तथा और और औरत-2010), शीला झुनझुनवाला (कुछ कही कुछ अनकही-2000), सुनीता जैन (शब्द काया-2005), निर्मला जैन (जमाने में हम), दिनेश नन्दिनी डालमिया (मुझे

माफ करना), कुसुम अंसल (जो कहा नहीं गया), प्रतिभा अग्रवाल (दस्तक जिन्दगी की-1990) महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं। इन्होंने आत्मकथाओं के माध्यम से अपने भोगे हुए यथार्थ को तत्कालीन परिवेश को शब्दबद्ध किया है। आज की स्त्रीवादी लेखिकाएं 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध आँखों में पानी' के बहकाव से आगे निकलना चाहती हैं, उसमें वह फँसना नहीं चाहती।

कस्तूरी कुण्डल बसै और गुड़िया भीतर गुड़िया (मैत्रेयी पुष्पा)

21वीं सदी की यह महत्वपूर्ण आत्मकथा है, जो दो भागों में- 'कस्तूरी कुण्डल बसै' तथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में विभाजित है। प्रथम भाग में जहाँ माँ की कथा से लेकर अपनी पहली पुत्री के जन्म तक की आपबीती पूरी ईमानदारी और सच्चाई से व्यक्त करती है, वही दूसरे भाग में आगे बढ़ने की कोशिश करती हुई जीवन के बाकी हिस्सों का वर्णन करती है। मैत्रेयी की आत्मकथा का प्रथम भाग उसके जीवन को उकेरता है जो अपने आत्म सम्मान को पहचानने के बाद कोमल नाजुक गुड़िया एक स्थूल ठोस व्यक्तित्व का आकार निर्मित कर लेती है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' का केन्द्रीय स्वर विद्रोह एवं आत्मानुशासन की तहों में छिपी निगूढ़ बौद्धिकता है, जो इसे आत्मकथा से अधिक समूची स्त्री जाति की संघर्ष कथा बना देती है। कस्तूरी अस्मिता की लड़ाई शान्त व चुपचाप नहीं करती बल्कि वह खुले शब्दों में बात करती है। वह समाज के वर्चस्व को चुनौती और धिक्कारते हुए एक नये राह का अनुगमन करते हुए स्त्री सशक्तीकरण का महती स्वप्न निर्मित करती है। वास्तव में कस्तूरी के ठोस व्यक्तित्व का केन्द्रीय गुण निर्णय क्षमता है और यही निर्णय क्षमता ही स्त्री सशक्तीकरण की बुनियाद है। स्त्री लेखन का विरोध सामन्ती पितृसत्तात्मक दुराग्रहों के विरुद्ध है। स्त्री के मान-सम्मान और उसकी निजता को खण्डित करती इस भाषा के प्रतिकार के लिए आवाज उठाना आवश्यक है जिससे पुरुष के सामाजिक वर्चस्व को तोड़ा जा सके। इसी बिन्दु पर ही मैत्रेयी जी का यह कथन उल्लेखनीय है- "द्रोपदी मत बन, द्रोपदी

को लोग आसानी से नंगी कर लेते हैं, क्योंकि उसकी देह सम्मिलित सम्पत्ति मान ली जाती है।¹⁴ मैत्रेयी की परम्परागत जीवन शैली— लड़की बचपन में पिता पर, युवावस्था में पति पर तथा वृद्धावस्था में सन्तान पर आश्रित होती है, के पुरुषवादी कथन से ऊपर उठकर अपने व्यक्तिगत जीवन में स्वतंत्रता चाहती है। वह अब पुरुष की मानसिकता को भली-भाँति समझ गयी है। किन्तु “पुरुष को समझना भी तो इतना आसान नहीं। यह दीगर बात है कि वह स्त्री को दुरुह बताकर खुद को सरल सुलभ घोषित कर देता है। सुलभ होता है तो अपनी इच्छा पर।¹⁵ मैत्रेयी जी पुरुषों के सनातन पवित्र रहने की धारणा का भी अपनी आत्मकथा में खण्डन करती हुई दिखायी देती हैं। उनका मानना है कि— “सामान्य होकर पैदा होना भी खूबसूरती है, पुरुष यह सब इसलिए नहीं सोचते क्योंकि पुरुषों का बदसूरत होना माना नहीं जाता। पति शक कर रहा है, क्योंकि हर हाल में उसका सब कुछ पवित्र है। वह गन्दगी की खान भी मानी जायेगी, साफ सुथरी बर्दाश्त जो नहीं होती।¹⁶ यही सब कारण है कि जिससे सभी महिलाएं अपने पतियों को जल्लाद का सम्बोधन देती हैं। मैत्रेयी पुष्पा अपनी आत्मकथा में लिखती हैं— “मादा का स्वामी नर अपने शिकार को मनमाने तौर पर झिंझोड़ता है। पति का यही रूप होता है तो पति का नाम जल्लाद या दरिन्दा होना चाहिए।¹⁷

‘गुड़िया भीतर गुड़िया’ स्त्री जीवन का महाख्यान है। यह एक स्त्री की कथा नहीं बल्कि स्त्री जाति के गिरह-गाँठों का खोलने का प्रयास है। पैंतालीस बरस की लम्बी उम्र तक गृहस्थी के प्रति मैत्रेयी पुष्पा का विकल्पहीन समर्थन स्त्री के भीतर जीती श्रुतमुर्गी प्रकृति के इतिहास की आवृत्ति है अपनी ही आँखों में धूल झोंक कर ‘सुखी’ बने रहने का स्वाँग। करुणा और शृंगार के बीहड़ से निकलकर संघर्ष और सृजन की जिन्दगी का पर्याय मानते हुए, आत्मकथा यह बताती है कि परिवार की दहलीज लाँघकर स्त्री जैसे ही सार्वजनिक जीवन में कदम रखकर निजी रिश्तों की विवाहेतर दुनिया का सामना करती है उसे एक अलग तरह की राजनीति से निपटना

पड़ता है। मैत्रेयी पुष्पा भी एक ऐसी ही स्त्री हैं, जिन्हें समाज ने जितना बनाया, उससे अधिक उन्होंने अपने-आप को बनाया। इस आत्मकथा में जहाँ एक ओर एक गृहिणी, माँ और पत्नी के संघर्षों की पीड़ा छिपी है, वहीं दूसरी ओर इन सबसे संघर्ष करते हुए लेखक तक पहुँचने की लड़ाई का दस्तावेजी बयान भी है। उनके जीवन में आये अनेक उतार-चढ़ावों के परिणामस्वरूप उनकी आत्मकथा कारामुक्त होती हुई औरत के स्वाभिमान और जागरूकता की कहानी है। प्रारम्भ में राजेन्द्र यादव इनकी रचनाओं को वापस कर देते थे। इसमें जीवन में आये सुख-दुःखों से उबरने वाली ग्रंथियाँ जहाँ एक ओर छिपी हुई है, वहीं दूसरी तरफ मान-अपमान का दंश और जय-पराजय का शोक और हर्ष भी छुपा है। गुड़िया भीतर गुड़िया के निवेदन में स्वयं मैत्रेयी पुष्पा ने कहा है— “सुना था साहित्य व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता देता है। हाँ, लिखकर ही तो मैंने जाना कि मैं धर्म के खिलाफ थी, न नैतिकता के विरुद्ध। मैं तो सदियों से चली आ रही तथाकथित सामाजिक व्यवस्था से खुद को मुक्त कर रही थी।”¹⁸

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा ‘गुड़िया भीतर गुड़िया’ प्रत्येक उस भारतीय स्त्री की आत्मकथा है जो घर, परिवार, समाज के दबावों से संघर्ष करती, जूझती हुई, समाज में संतुलन बनाकर अपनी लगन, दृढ़ता एवं साहस के बल पर सदियों से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था से स्वयं को मुक्त करने का खतरा मोल लेती है। इस संदर्भ में डॉ० सिद्धार्थ से सम्बंध की बात हो या राजेन्द्र यादव से। मैत्रेयी ने सच कहने की पूरी आज़ादी के साथ बड़े खतरे उठाए हैं। अपनी अभिव्यक्ति में कहीं दुराव, छिपाव नहीं किया है। उन्हें जीवन में इतने तिरस्कार मिले जिससे उनके आत्मघाती व्यक्तित्व ने आत्मविश्वास से युक्त यह निर्णय कर लिया अब मैं अपनी नज़रों में गिरना नहीं चाहती। वह सोचने लगी कि क्या पति की दुनियाँ के आगे कोई और दुनियाँ है या नहीं ? मैत्रेयी पुष्पा विवाह और पति को लेकर जो धारणाएं रखती हैं उसे उनकी ही शब्दावली में अच्छे से समझा जा सकता है— “जो लोग इलज़ाम लगा रहे हैं, उन्हें

जाकर बता दो शादी के बाद मुझे मेरे हिसाब से कारावास मिला है, जिसके लोहकपाट तभी से तोड़ने में लगी हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस दुनिया के अलावा भी कोई दुनिया है ? पति के अलावा कितने लोग हैं बाहर ? वैसे पति से बैर-भाव नहीं पाला, मगर उनके किसी खूँटे से बंधना ?मैं भी अपने अन्दर गहरी भावनाएं रखती हूँ, जैसे कोई गुप्त प्यार को बचा लेता है।¹⁹ पति को लेकर उनकी टिप्पणी काफी गहरा अर्थ रखती है, जिसमें पत्नी की भूमिका भी अन्तर्निहित है— “पति को क्या चाहिए, यह भी जानती थी। मन से ज्यादा तन का समर्थन और उसकी मौन आवृत्ति, कम नहीं, ज्यादा से ज्यादा करनी होती है। इसमें छल और छद्म के लिए जगह नहीं। जैसे विवाहित जीवन की यही कसौटी हो। मैं संयत-सी संतुलित स्त्री, जिसके लिए यह समय संतोष और आनन्द भरा था, क्योंकि देह उत्तेजना अभी आदत में शुमार नहीं हुई थी। डॉ० साहब के लिए प्रेम का, दाम्पत्य का और स्त्री-पुरुष के मानसिक और शारीरिक सम्बंध का अर्थ एक ही है।²⁰”

मैत्रेयी जी मानती हैं कि— “सतीत्व के दम पर मुझे स्वर्ग मिल जाए (अगर मिलता हो तो) वह स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, जिससे मैं भविष्य की दिशाएं और रास्ते तय कर सकूँ। मैं अपनी जिन्दगी के निर्णायक मंडल की अध्यक्ष या जूरी की जज, खुद को फैसला दे रही थी।²¹ मैत्रेयी पुष्पा रचनाकार की हैसियत से अपने कर्मक्षेत्र का निर्धारण करती हैं तो यह सवाल चुनौती बनकर मानों उनकी राह को प्रशस्त कर जाता है— “जो लिखूँगी, सच ही लिखूँगी, बेशक जिसे देखकर खुद ही सन्न रह जाऊँ और सजा भी मिले। सजा इसलिए मिलेगी क्योंकि औरतों की ऐसी छवि बनेगी कि पुरुषों की इज्जत को खतरे..... परिवारों के खम्भे हिल उठेंगे।²² लेखिका को आभास है अपनी कथा-परिणतियों का, लेकिन सच को कहने की जिद भी तीव्रतर कि— “स्त्री के लिए शास्त्रों द्वारा दी गयी नैतिक संस्कृति, बताए गए जीवन मूल्य और शुचिता का पाठ हमारी सक्रिय जिन्दगी के अनुरूप नहीं क्योंकि पुरुष जाति ही इसे खंड-खंड तोड़

डालती है। मर्दानगी ही हमारी शुचिता को क्षत-विक्षत करती है।²³ उन्होंने अपने बीहड़ जीवन-अनुभवों और विपुल रचनात्मक जिजीविषा को अपनी रचनाओं का केन्द्र बनाकर स्त्री अस्तित्व और अस्मिता की तलाश को स्थापित किया है। जब वे लिखती हैं— “औरत के खिलाफ जुल्म का खुलासा सच में ही क्या इतना बड़ा मसला है कि मुझ जैसी मामूली स्त्री से स्त्रियाँ जुड़ जायें। मेरे अनुभव क्या उन सबके अनुभवों के आस-पास हैं ? मेरी तरह वे भी आज़ादी का रास्ता ढूँढ रही हैं ?” तब आधी दुनिया के आपसी जुड़ाव को ही व्यक्त करती हैं। क्या आत्मसम्मान पाने के लिए अपमान भी उतना आवश्यक है, उन्होंने लिखा है— “मैं डुगडुगी हूँ, डॉ० सिद्धार्थ नचाए या मेरे पति। मदारी छीना-झपटी में लगे हुए। मेरी इच्छा की परवाह किसी को नहीं।²⁴ जीवन में मैं कभी नाचने को तैयार नहीं हुई किन्तु अपने हकों व अधिकारों के लिए उठ खड़ी थी जिनसे मेरी ज़िन्दगी के मान-सम्मान का प्रश्न जुड़ा हुआ था। मैत्रेयी ने अपनी आत्मकथा में लड़की होने के दंश के अनुभव को खोलकर रख दिया है। एक स्त्री, रचनाकार एवं आत्मकथाकार के रूप में मैत्रेयी पुष्पा की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह अपनी कमजोरियों पर स्वयं को निरन्तर झकझोरती एवं हड़काती रहती हैं। यह बात उनकी आत्मकथा के सम्मान में भी दिखायी देती है। वे लिखती हैं— “क्या पाया और क्या-क्या नष्ट हुआ, सब कुछ इस कहानी में है। अब हम वैसा कहाँ रहे, “जैसे कि हुआ करते थे। सम्भवतः यही रचनात्मक जीवन-दृष्टि है और यही साहित्य की शक्ति।²⁵ इस तरह एक गुड़िया के भीतर से निकली गुड़िया की संघर्ष गाथा समाप्त हो जाती है। स्त्री आत्मकथा लेखन में मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाएं अतिमहत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। अपनी आत्मकथा में वह लक्ष्मण रेखा को पार करने की पूर्ण शक्ति रखती हैं। उनकी ये आत्मकथाएं स्वाभिमान की कहानी प्रतीत होती हैं जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विसंगतियों को विस्तार से हमारे सामने रखती हैं। यह केवल स्त्री अनुभूति के दायरे में ही नहीं सिमटी है बल्कि इसमें भी धर्म सम्प्रदाय और राष्ट्रभक्ति के दिखावे पर कटाक्ष है। उनकी आत्मकथाएं स्त्री जिजीविषा की कहानी हैं।

हादसे (रमणिका गुप्ता)

आत्मकथा के संदर्भ में रमणिका गुप्ता भी एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। 'हादसे' उनकी रचनात्मक ऊर्जा से भरपूर एक ऐसी अपराजिता स्त्री की लोमहर्षक दास्तान है जो लैंगिक चेतना से आक्रान्त समाज को लिंगगत पहचान भूलने को बाध्य कर एक कर्मठ राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में रेखांकित करती है। 'हादसे' उनके आत्म सम्मान, आत्मविश्वास, आत्मदृढ़ता, निर्भीकता, दुर्धर्ष-क्षमता एवं अपराजेय जिजीविषा का पूँजीभूत रूप है। आत्मकथा की शृंखला चार सोपानों में पूर्ण होती है— पहला 'हादसे' दूसरा 'कोयला खदानों में संघर्ष', तीसरा '1973 में खदानों का राष्ट्रीयकरण' और चौथा 'बिहार विधान परिषद्'। यह आत्मकथा व्यक्तिगत जीवन, ट्रेड यूनियन का संघर्ष और राजनीतिक गतिविधियों को एक साथ संयोजित करती है। इसमें लेखिका ने अपने जीवन के निर्णायक क्षणों व उसकी परिवेशगत समस्याओं को पिरोया है और जीवन के व्यापक क्षेत्र तक अपनी पहुँच भी सुनिश्चित की है। वे अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों से ही निडर, जिद्दी, पारिवारिक परम्पराओं को नकारने वाली थीं। 1948 में बगावत करते हुए विवाह के संदर्भ में अपना निर्णय स्पष्ट कर देना साहस का काम है। वह कहती हैं— "पिता ने कहा, शादी का फैसला बदलना ही होगा नहीं तो तुम दोनों में से किसी एक को ज़हर खाना होगा— तुम्हारी माँ को या तुम्हें", रमणिका ने उत्तर दिया— 'मैंने तुरन्त जबाव दिया, मेरी माँ और आप ज़िन्दगी के सुख-दुःख देख चुके हैं, भोग चुके हैं, मुझे अभी ज़िन्दगी देखनी बाकी है, इसलिए जहर मैं नहीं खाऊँगी बीबी जी (माँ) खाये।' लेखिका एकांकी पहचान चाहती थी। किसी की पत्नी होने के नाते नहीं। इसमें स्त्री चेतना को उर्ध्वमुखी बनाकर समाज और उसके जटिल तंत्र से जोड़ने का हठ है जो लेखकीय जीवनानुभवों का निजी आख्यान न रहकर समूचे समाज का स्वप्न व संकल्प हो जाती है। यही इसकी उपलब्धि भी है। लेखिका की आत्मकथा में दाम्पत्य सम्बंध एवं प्रेम सम्बंधों की चर्चा उसके लिए एक प्रेरक शक्ति है जिसकी मौजूदगी में

कुचली अदना सी हस्ती आकाश की बुलन्दियों तक पहुँचने की कामना करती है। आत्मकथा में कोयला खदानों के मजदूरों के संघर्ष उस समय और समाज का सृजन करते हैं, जो वांछित है। यह रचना एक सार्थक हस्तक्षेप के साथ स्त्रियों की मानसिक आजादी की वकालत करती है। जिसके बिना आर्थिक निर्भरता, सामाजिक प्रतिष्ठा व सम्मान और कानूनी सुरक्षा सब बेमानी हो जाते हैं। रमणिका गुप्ता की इस आत्मकथा की भूमिका में राजेन्द्र यादव लिखते हैं— “बिहार जैसे अराजक प्रदेश के सामंती मोर्चे पर नंगे-भूखों को लेकर उनके अधिकारों की लड़ाई लड़ना, लामबंद करके उनके हक दिलाना, सचमुच जान जोखिम में डालना है। एक जंगलराज है, जहाँ पुराने सामंतो, जमींदारों, ठेकेदारों और बाहुबलियों का बोलबाला है। “अनंत प्राकृतिक संपदाओं से भरी हुई धरती पर लूट, हत्या, अपहरण साधारण जीवन प्रणाली का दूसरा नाम है, फिर बाढ़, सूखा, गर्मी-सर्दी के मौसमी प्रकोप..... इन सबके बीच पंजाब के अभिजात परिवारों से आई हुई एक स्वस्थ सुन्दर रमणिका गुप्ता.....रहस्य, रोमांच और सस्पेन्स का पूरा फिल्मी मसाला.....।”²⁶ आत्मकथा के प्रारम्भ में रमणिका जी ने ‘औरत अगर खुदसर हो’ भूमिका के अन्तर्गत कहती हैं— “औरत अगर खुदसर हो, पंजाबी भाषा में कहूँ ‘आन हुदरी’ जो उसकी मुखालफत लाजमी होती है और अगर कहीं राजनीति में हो और वह भी लता बनकर नहीं, बल्कि पेड़ या खूँटा बनकर तो उसे हिला देने की तरकीबें झकझोर देने के ढंग उखाड़ फेंकने के प्रयास इतिहास तक पहुँच जाते हैं।”²⁷ राजेन्द्र यादव के अनुसार— “इस आत्मकथा को स्त्री के अपने चुनाव की कहानी भी कहा जा सकता है।” वे “इस आत्मकथा को एक ‘अबला’ का परत दर परत अपने को छीलते जाने और सबला के अधिकार की प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है, हालाँकि यहाँ यह एक औरत की नहीं राजनीतिक कार्यकर्ता की कहानी अधिक है। आगे वे पुनः कहते हैं कि— “सपनों, संघर्ष और साहस की यह कहानी बीसवीं सदी के भारत का वह इतिहास है जिसे मुख्यधारा के इतिहासकारों ने बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया और जिसे खेतों-खलिहानों और खदानों में रमणिका ने अपने यौवन और प्रौढ़

उम्र के कागजों पर लिखा है।²⁸ पुरुष प्रधान समाज में हर त्याग, बलिदान, उत्सर्ग, दया, करुणा और सहनशीलता की अपेक्षा हमेशा महिलाओं से की जाती है। एक स्त्री होने के नाते लेखिकाओं में यह सभी अवगुण विद्यमान रहता है जो हमेशा उसके लिए अहितकर होता है। शुरू में शौकिया लेखन समझकर घर-परिवार के सदस्य कोई खास विरोध नहीं करते हैं लेकिन जब वही शौक का रूप लेने लगता है तो उस लेखिका का पांव परिवार वाले इस कदर जकड़ते हैं कि उसे छुड़ाने की कोशिश में वह जीवन भर छटपटाती है, फिर भी उसका प्रयास जारी रहता है। रमणिका इन कठनाईयों को बड़ी आसानी से पार कर जाती हैं।

रमणिका जी ने औरत के चरित्र को लेकर भी अपनी एक ज्वलंत टिप्पणी की है। “मैं औरत के संदर्भ में ‘पतित’ शब्द की परिभाषा से सहमत नहीं हूँ। यह शब्द औरत के चरित्र से जोड़ा जाता रहा है और चरित्र का अर्थ केवल औरत के यौन सम्बंधों को लेकर ही समझा जाता है। औरत के संदर्भ में चरित्र के अन्य गुण या लक्षण जैसे— नैतिकता, शालीनता, ईमानदारी, परस्पर सद्भाव या संवेदनशील तथा बहादुरी और निडरता आदि को नजर अंदाज कर दिया जाता है।²⁹ वे पुरुषों की उस मानसिकता की भी खुलासा करती हैं जिसमें वह— “पुरुष औरत को उसी हालत में बर्दाश्त करता है, जब उसे यह यकीन हो जाए कि वह पूरी तरह उसी पर आश्रित है और खुद कोई निर्णय नहीं ले सकती या फिर वह स्वयं उस औरत से डरने लगे, तो वह उसे सहता है।³⁰ पुरुषों की दशा तो यही रही है कि वह— “अत्यंत प्रेम और समर्पण के क्षणों में भी पुरुष अपने निर्णय को अन्तिम साबित करने की जिद करता है।³¹ रमणिका जी ने सामाजिक क्षेत्र और उसमें भी खासकर राजनीति में आने वाली औरतों को एक संदेश दिया है कि उन्हें खुद का सहारा या सहयोगी खुद ही बनना श्रेष्ठकर है, बल्कि दूसरों का सहारा ढूँढ़ना व्यर्थ है। वे अपनी आत्मकथा में लिखती हैं— “राजनीति और समाज-सेवा में आत्मविश्वास, हौसला निडरता और हठ जरूरी चीजें

हैं। एक औरत को आगे बढ़ने के लिए 'थेथर' होना भी जरूरी है। थेथर का मतलब संवेदन रहित नहीं बल्कि पूर्ण तथा संवेदनशील होते हुए विपरीत स्थितियों में डटे रहना है— आरोपों, कलंकों और घटनाओं—दुर्घटनाओं तथा ज्यादातियों को झेलते हुए अपने रास्ते चलते रहना और संकल्पशक्ति तथा इच्छाशक्ति का बल बनाए रखना ही है। इसका मतलब है खुद को अपनों की बेरुखी सहने को भी तैयार रखना।³² उन्होंने अपने बारे में कहा है— “मेरी इच्छा के विपरीत कोई मुझ पर कैसे अधिकार जमाएगा, यही मेरी ज़िद रही, मेरी इच्छा है तो सब सम्भव है, नहीं तो कुछ नहीं, अपनी इच्छा से मैं किसी भड़भूजे के साथ भी सो सकती हूँ पर मेरी इच्छा नहीं तो मुख्यमंत्री भी मुझे नहीं पा सकते।”³³

नारी मुक्ति या स्वतंत्रता के लिए वह समाज की सोच में परिवर्तन आवश्यक मानती हैं अन्यथा हर रोज़ कई पुरुषों का समाना करना निश्चित है। समाज कितना भी प्रगतिशील क्यों न हो जाए स्त्रियों के मामले में बहुत स्पष्ट नहीं हो पाता है। शृंखला की कड़ियाँ में महादेवी वर्मा ने लिखा— “हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए न प्रभुता केवल अपना वह स्थान वह स्वत्व चाहिए जिनका पुरुष के निकट कोई उपयोग है। परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकेंगी।”³⁴ इस प्रकार से रमणिका की आत्मकथा उनके समकालीन परिदृश्य का जीवंत दस्तावेज है। यह आत्मकथा एक जुझारू और संघर्षशील औरत की संघर्षगाथा है। इन्दिरा गांधी, संजय गांधी से लेकर समाजवादी पार्टी तथा पत्रकारों व मीडिया आदि पर भी उन्होंने हर ढंग से सब कुछ कह डाला है। वे खुद को औरत होने के कारण किसी अपराध बोध से ग्रस्त नहीं माना और न ही अपने भीतर हीन मनोग्रन्थि को पनपने दिया। वह औरत की कमजोरी को औरत की कमजोरी न मानते हुए सम्पूर्ण मनुष्य की कमजोरी मानती है। स्त्रियों के प्रति उनका अपना नजरिया बहुत ही बोल्ड रहा है।

अन्या से अनन्या (प्रभा खेतान)

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' निजताबोध और एक आत्मग्रस्त महिला की आत्मकथा है। इसमें एक अविवाहित स्त्री का विवाहित पुरुष के प्रति दीवानगी से भरा चित्रण सफलता पूर्वक किया गया है। लेखिका ने अपनी अनभिज्ञ किशोर जीवन काल की मूर्खताओं को भी बेबाक तटस्थता के साथ वाणी दी है। आत्मकथा का प्रारम्भ डॉ० सर्राफ के साथ उनकी विदेश यात्रा से शुरू होता है। फिर अपने जन्म, बचपन, मारवाड़ी परिवार में जन्म के कारण पाबन्दियों में बीतता बचपन। साँवली रंगत के कारण माँ की अवहेलना, माँ के कठोर नियम, इन सबके बीच पिता की मृत्यु, आर्थिक तंगी में माँ का निडर होकर परिवार चलाना, अमेरिकी यात्रा, इसी बीच सर्राफ से मुलाकात, पाँच बच्चे के पिता चालीस वर्षीय अधेड़ सर्राफ से प्रेम करना आदि का वर्णन करती है। व्यवसाय से जुड़ना और अन्त तक डॉ० सर्राफ की होकर रहना, उनके परिवार से जुड़ने से लेकर उनकी मृत्यु तक का विवरण आत्मकथा में पूरी संजीदगी के साथ बयां है। 'अन्या से अनन्या' हंस में धारावाहिक रूप से प्रकाशित प्रभा खेतान की आत्मकथा है। 2007 में इसका पहला पुस्तकालय संस्करण राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड' द्वारा प्रकाशित किया गया। इस आत्मकथा को जहाँ एक बोल्ड और निर्भीक आत्मस्वीकृति की साहसिक गाथा के रूप में अकुंठ प्रशंसाएं मिली, वहीं बेशर्म और निर्लज्ज स्त्री द्वारा अपने आप को चौराहे पर नंगा करने की कुत्सित बेशर्मी का नाम भी दिया गया है.....।³⁵ सक्रिय स्त्रीवादी लेखिका प्रभा खेतान न सिर्फ विश्व के लगभग सारे स्त्रीवादी लेखन को आत्मसात किया बल्कि अपने समाज में उपनिवेशित स्त्री के शोषण, मनोविज्ञान, मुक्ति के संघर्ष पर विचारोत्तेजक लेखन भी किया है। अन्या से अनन्या हताशा की पीड़ा और आक्रोश दोनों को एक साथ गहराई में व्यक्त किया है। उन्होंने इसमें अपने को सहेजकर उठने, जूझने और परिस्थितियों की वार्ता बनने की अदम्य मानवीय जिद से लबरेज हो, युगीन इतिहास को रचने का

ओजस्वी बोध कराता है। वैचारिक क्रान्ति की सक्रिय भूमिका में 'अन्या से अनन्या' की केन्द्रीय शक्ति है। एक बड़े घराने में पैदा होने के बावजूद स्त्री के रूप में प्रभा खेतान को उन्हीं संघर्षों कठिनाइयों से गुजरना पड़ा जैसे आम स्त्रियों को गुजरना पड़ता है। उन्होंने बड़े दुस्साहस के साथ संयुक्त परिवार में लड़की के साथ होने वाले व्यभिचार का जिक्र किया है। उनके यहाँ यौनिक-शुचिता न केवल दहशत है, बल्कि इसे स्त्री पर होने वाले अत्याचार का एक कुत्सित उदाहरण भी माना है। उनकी यह आत्मकथा केवल मारवाड़ी समाज की रूढ़ियों और कुंठाओं पर ही प्रहार नहीं करती बल्कि बंगाल के पूरे सामाजिक वातावरण को भी उद्वेलित करती है। अपनी आत्मकथा में कहती हैं कि— क्रूर समाज था, क्रूर परिवेश, उनकी क्रूरता जितनी त्रासद थी उतनी ही बेतुकी भी और ऐसे परिवेश में अपना ही कटा हुआ सर अपनी हथेलियों पर लिये मैं घूम रही थी। मुझे कोई शारीरिक सजा नहीं मिली, किसी दैहिक पीड़ा का अहसास कभी नहीं हुआ लेकिन एक चरम मानसिक यंत्रणा को भोगते रहने को, एक स्थायी आतंक को झेलते रहने को मैं बाध्य थी।” सामाजिक उद्वेलन का प्रभाव राजनैतिक वातावरण पर किस प्रकार पड़ा इसे प्रभा ने बड़े सहज और स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। “मारवाड़ी अण्डा और चिकन रोल तो खाना सीख गया मगर फिश फ्राई से नफरत करता है।”³⁶ इस अर्थ में इनकी आत्मकथा राजनैतिक दस्तावेज भी है। लेखिका को अपने प्रति ईमानदार होने का दंश भी झेलना पड़ा है। वह कहती है कि— “मैं स्मृतियों की पगडंडी पर संभाल-संभाल कर कदम रख रही हूँ। कभी आंचल झाड़ियों में उलझता है, कभी पैरों में नुकीले पत्थर चुभते हैं..... कभी सामने कोहरे के बादल..... सामने कुछ दिखायी नहीं पड़ता और कभी पैरों के नीचे ठंडी ओस की बूँदें, मुझे मेरे आँसुओं की याद दिलाती हुई।”³⁷ जिन प्रतीक व बिम्बों के बीच लेखिका के अपने वक्तव्य हैं, वह निश्चित रूप से एक स्वावलम्बी आत्मनिर्भर और संघर्षशील महिला के चरित्र को उद्घाटित करता है जो न जाने कितने जोखिमों झंझावातों का दुष्परिणाम हो सकता है।

‘स्त्री होना क्या है?’ यही सवाल पूरी आत्मकथा में है। इन्हीं सवालों के जवाब में उनकी रचनात्मक प्रक्रिया पूरी होती है वह कहती फिरती है कि— “मैंने हथेलियों में मुँह छुपा लिया था। धीमी रूलाई के बीच क्षणों के इस रिश्ते की व्यर्थता को समझ गयी थी। क्या दे देगा यह पुरुष मुझे.....। मैं स्त्री हूँ पर मैं मनुष्य भी तो हूँ।”³⁸ यही मानवीयता और मनुष्यता की लड़ाई में वह अपने को पूरी तरह झोंक देती है।

लेखिका अपने प्रेम सम्बंधों का भी खुलासा बड़े विश्वास में करती है। प्रेम की सूक्ष्मता और उसकी गहनता को बड़े आत्मविश्वास के साथ रेखांकित करती है। उसका प्रेम एक ऐसा प्रेम सम्बंध जो न विवाह बन्धन में बँधा, न कामना के आवेग के उतरते ही नष्ट हुआ, वरन् डॉ० सर्राफ की मृत्यु तक पूरे अटूटारह बरस चला। वह कहती है— “अपने निर्णय पर मैं पछताने वाली नहीं, जो आप दे नहीं सकते, उसकी मुझे जरूरत नहीं, कि मुझे समाज की चिन्ता नहीं, कि मेरी राय में विवाह एक ओवररेटेड संस्था है। मैं इस संस्था को ज्यादा तरजीह देने से इन्कार करती हूँ।”³⁹ चार बच्चों के पिता डॉ० सर्राफ इस रिश्ते को स्वीकार भी करते हैं और अस्वीकार भी, जैसा कि प्रभा खेतान ने लिखा है कि डॉ० सर्राफ कहते हैं— “ठीक है, तुम सुनना चाहती हो ना, तो सुन लो मेरे लिए इस सम्बंध का कोई महत्व नहीं..... क्योंकि मेरे लिए औरत बस देह है, मन लगाने की चीज, और कुछ सुनना चाहती हो ?”⁴⁰ वह प्रभा खेतान के प्रेम निवेदन को जिन शब्दों में बयां करता है, वह अधिक चौंकाने वाला है— “मैं..... मैं.... तुमसे नफरत करने लगा हूँ, सुना तुमने और सच्चाई यह है कि प्यार—व्यार जैसे शब्दों पर मेरा विश्वास ही नहीं। प्यार एक भ्रम है और कुछ नहीं और इस भ्रम को तुम जीना चाहती हो तो जीओ, मुझे इसमें क्यों घसीटती हो।”⁴¹ इसके बावजूद प्रभा जी ताउम्र प्रेम की स्थापना करते हुए रिश्ते को बनाए रखने के लिए नाकामयाब कोशिशें करती रहीं। एक विलक्षण बुद्धिजीवी महिला एक सामान्य महिला से भी नीचे जाकर स्वयं की इस झूठी

जिन्दगी को ओढ़ने में कोई हिचकिचाहट नहीं। वह कहती है कि— “स्त्री होना कोई अपराध नहीं हैं, पर नारीत्व की आँसू भरी नियति स्वीकारना बहुत बड़ा अपराध है।”⁴²

निस्संदेह ‘अन्या से अनन्या’ आत्मा का विसर्जन करती रंक अन्या से आत्म का पुनरान्वेषण, पुनर्संयोजन और संवर्धन कर जीवन के प्रति अनन्य आस्थावान बनती स्त्री का महाख्यान है। वह स्वयं जानती है कि उसका समूची वजूद ‘पत्नीत्व’ संस्था के लिए खुली चुनौती है। सामाजिक जीवन के स्तर पर वह बेशक देह के स्तर पर जीती नजर आती हैं लेकिन देहातीत हो जाने का मूलमंत्र भी वे यहीं से पाती हैं कि— “प्रेम से ज्यादा महती भावना है एक दूसरे के प्रति मानवीय लगाव एवं करुणा। हम एक—दूसरे को इसलिए बचाना चाहेंगे क्योंकि हम खुद जिन्दा रहना चाहते हैं।”⁴³ बाजारवाद की चकाचौंध के बीच भी प्रभा खेतान सावधान दिखायी देती हैं। मुक्ति, बाजार और देह की त्रिकोणात्मक सम्बंध को समझकर ही स्त्रियाँ अपनी मानवीय अस्मिता को बचाये रखने के लिए मानवीय विकल्पों की तलाश करती हैं। “औरत जैसे पुरुष के लिए जीती है। अकुंठ समर्पण की जमीन पर संवेदना की तरलता से सिंचित इकाई के रूप में, पुरुष भी क्यों नहीं औरत के लिए जी पाता ?”⁴⁴ दरअसल पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को हमेशा सेक्स से जोड़कर देखा गया है। शायद यही कारण है कि नारी मुक्ति आन्दोलन में देह की आजादी पर ज्यादा जोर दिया गया, इसे मन की आजादी से जोड़कर देखा गया। सदियों से पुरुष के दमन के प्रति यह एक आक्रोशमय प्रतिक्रिया है। रचना और चिन्तन दोनों ही स्तरों पर देह की आजादी को केन्द्र में जगह दी गयी। प्रभा खेतान द्वारा डॉ० से किया गया प्यार इसी आक्रोशमय प्रतिक्रिया का परिणाम है— “मुझे मालूम था कि वे शादीशुदा व्यक्ति हैं। भला एक शादीशुदा व्यक्ति से दूसरी स्त्री को पत्नी का अधिकार कैसे मिल सकता है ? लेकिन पुरुष से प्यार तो किया ही जा सकता है। प्यार में भला कैसी बाधा।”⁴⁵ लेकिन अगले ही पल यही प्यार आक्रोशमय प्रतिक्रिया में बदल जाता है— “डॉ० साहब! आप मुझे इस तरह खारिज नहीं कर

सकते, समझे ? मैं उन औरतों में नहीं जो आजतक आप के पास आती-जाती रहीं..... मैं शरीर को भी उतना ही पवित्र मानती हूँ जितना कि मन को। मैंने आपको दोनों ही दिये हैं।⁴⁶ यह समाज की एक विचित्र व्यवस्था है कि स्त्री यदि अधिकार पाना चाहती है तो रिश्ता टूटता है और यदि रिश्ता, तो अधिकार छूटता है। इस प्रकार लेखिका की सम्पूर्ण चेतना स्त्री मुक्ति प्रसंगों के साथ बड़ी गहराई से जुड़ गयी है।

एक कहानी यह भी (मन्नू भण्डारी)

मन्नू भण्डारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' काफी हद तक ईमानदारी और स्पष्टवादिता से लिखी हुई उनकी जीवन यात्रा और साहित्यिक यात्रा का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। लेखिका इसे आत्मकथा की मान्यता नहीं देती फिर भी इसमें उनके भाव जगत एवं सांसारिक जीवन के उन सभी पहलुओं पर भरपूर प्रकाश पड़ता है, जो उनकी रचना यात्रा में निर्णायक सिद्ध हुए हैं। यह उनका मूलतः आत्मस्मरण या सेल्फ जस्टीफिकेशन है। आत्मकथा होने के बावजूद उन्होंने इसे अपनी आत्मकथा न मानने की हिदायत देती हैं। उनके निजी जीवन के प्रसंगों, तनावों, विश्वासघातों, अरोपों और शिकायतों से भरपूर इस आत्मकथात्मक रचना को क्या कहा जाए ? इस ओर संकेत करते हुए वह लिखती हैं— "यहाँ मुझे केवल उन्हीं स्थितियों का ब्यौरा प्रस्तुत करना था, वो भी जस-का-तस जिनसे मैं गुजरी... दूसरे शब्दों में कहूँ तो जो कुछ मैंने देखा, जाना, अनुभव किया, शब्दशः उसी का लेखा-जोखा है यह कहानी। जहाँ मेरे लेखन के क्रमिक विकास, उससे जुड़ी घटनाओं..... मुझे सहेजते-सँवारते, जोड़ते-तोड़ते सम्पर्कों-सम्बंधों पर ही केन्द्रित रहना इसकी सीमा है, वहीं इसकी अनिवार्यता भी।"⁴⁷ उनके बचपन, माता-पिता के चरित्र-चित्रण, शिक्षा तथा विवाह आदि के जिक्र के साथ-साथ दाम्पत्य की भग्नता, जीवन साथी का असहयोग, नौकरी-पेशा होने से उत्पन्न बाधाएं तथा बाहरी सामाजिक जीवन, साहित्य सृजन, लेखकों का सत्संग और इसके अलावा फिल्म और टी0वी0 के लिए किये जाने वाला

कार्य, यह सब कहीं न कहीं आत्मकथा का रंग चढ़ा देता है। उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकार भी किया है— “कोई भी लेखक न तो सम्पर्क—सम्बंध विहीन हो सकता है, न परिवेश—निरपेक्ष, इसलिए उन घटनाओं को तो इसका अनिवार्य हिस्सा होना ही था; जिन्होंने मात्र मेरी संवेदना को ही नहीं बल्कि पूरे देश को झकझोर कर रख दिया था। उससे जुड़े वे छोटे—बड़े प्रसंग, जिन्होंने कभी मुझे आहत किया, कभी बेहद क्षुब्ध तो कभी मुझे नासमझ के भ्रम—भंग भी किए। यो भी एक लेखक की यात्रा होती ही क्या है ? बस, उसकी दृष्टि परिवार के छोटे से दायरे से निकलकर धीरे—धीरे अपने आस—पास के परिवेश को समेटते हुए समाज और देश तक फैलती चलती है। इस प्रक्रिया के दौरान होने वाले अनुभव उसे केवल समृद्ध ही नहीं करते..... उसकी दृष्टि को साफ और संवेदना को प्रखर भी करते हैं। हाँ, अब वह लेखक की अपनी सामर्थ्य पर निर्भर करता है किस हद तक वह इन अनुभवों का रचनात्मक उपयोग कर सकता है।”⁴⁸ साहित्यिक कृति के रूप में ‘एक कहानी यह भी’ मन्नू भण्डारी के समकालीन साहित्यिक परिदृश्य की भीतरी नग्न सच्चाइयों का पर्दाफाश करती है। आपातकाल के दौरान सरकारी भोंपू बनकर रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती अपनी भौतिक लोलुपताओं के साथ निर्वासित हो जाते वहीं राकेश, राजेन्द्र और कमलेश्वर की साँठ—गाँठ साहित्य में माफिया का बीज बोते दिखायी दे जाते हैं। वह अपने लेखन में ‘स्व’ और ‘पर’ के भेद मिटाकर एकमेव होने की कामना से कहती हैं कि— “लेखन और साहित्य से हटकर अपने निजी जीवन की त्रासदियों भरे पूरक प्रसंग को लेखकीय जीवन पर केन्द्रित अपनी इस कहानी में सम्मिलित किया जाए या नहीं, इस दुविधा ने कई दिनों तक मुझे परेशान रखा। अपने कुछ घनिष्ठ मित्रों से सलाह ली और उनके आग्रह पर अन्ततः इसे सम्मिलित करने का निर्णय लिया। बाद में तो मैं भी सोचने लगी कि मेरा और राजेन्द्र का सम्बंध जितना निजता और अन्तरंगता के दायरे में आता है, उससे कहीं अधिक लेखन के दायरे में आता है। लेखन के कारण ही हमने विवाह किया था..... हम पति—पत्नी बने थे। उस समय मुझे लगता था कि राजेन्द्र से विवाह

करते ही लेखन के लिए तो जैसे राजमार्ग खुल जाएगा और उस समय यही मेरा एकमात्र काम था।⁴⁹ सामाजिक असमानता एवं दोहरे मानदण्डों ने नारी के मन में असंतोष भर दिया है। एक ओर वह शिक्षित और स्वावलम्बी बनकर अपने घर परिवार का बोझ उठा रही है या पति का हाथ बँटा रही है दूसरी ओर सामाजिक पारिवारिक बंधनों में जकड़ी कसमसा रही है। यह जरूर है कि महिला लेखन नारी-दुनिया को बेहतर बनाने की दिशा में अग्रसर हो रहा है। अब उनके लेखन में इस शोषण का विरोध और न्याय की पक्षधरता दिखायी पड़ती है। आज लेखिका को सामाजिक चिन्ता से सरोकार दिखायी देता है और संस्कारों की रूढ़ियों के बीच दबती पिसती नारी के बदले नारी स्वातंत्र्य के संदर्भ में स्वस्थ मानसिकता से भरपूर जीवन की सार्थकता दिखायी पड़ती है। श्री दीपक प्रकाश त्यागी ने लिखा है— “यह आत्मकथा के परम्परागत ढाँचे से बिलकुल भिन्न एक नये तरीके की आत्मकथा है, जिसमें संस्मरण एवं रेखाचित्र का भी तत्व है। आत्मविश्लेषण का तो है ही आत्मपरीक्षण, आत्मनिरीक्षण भी है, जो इस आत्म कहानी को दुर्लभ किस्म की आत्मकथा में रूपान्तरित करता है। इसमें लिखने वाली मन्नू एवं जीने वाली मन्नू के बीच राजेन्द्र यादव की उपस्थित से उत्पन्न त्रासदी की एक करुण यात्रा भी है।जीवन यात्रा के ब्योरे और तफसीलें नहीं है और न ही सनसनीखेज हैरतंगेज तत्व है, जिसे आत्मकथा की जान माना जाता है, किन्तु है वह आत्मकथा ही, जो लेखकीय सरोकारों एवं लेखकीय चिन्ता से शुरू इस काहनी में निजी स्त्री-अस्मिता के विभिन्न संदर्भों का परत-दर-परत हमारे सामने पेश करती है, किन्तु उनका साहस इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि उनके साथ ही उनके आसपास का पूरा परिवेश चाहे वह राजनैतिक हो या साहित्यिक, वैयक्तिक हो या सामाजिक अपनी पूरी संगति-विसंगतियों के साथ पहली बार आत्मकथा के मर्म में उद्घाटित हुआ है।⁵⁰ यह आत्मकथा इस बात का प्रमाण भी है कि लेखिका अपने देशकाल एवं सामाजिक परिस्थितियों से कितना अधिक सरोकार रखती है। वे अपने साहित्यिक जीवन के विषय में लिखती हैं कि— “अपनी पहली कहानी को पत्रिका में

छपा हुआ देखना भीतर तक थरथरा देने वाले रोमांचक अनुभव से गुजरना था। वैसा थ्रिल, वैसा रोमांच तो उसके बाद मैंने फिर कभी महसूस ही नहीं किया, जबकि कई बड़े-बड़े और महत्वपूर्ण अवसर आए।⁵¹ आगे लिखती हूँ— “विश्वास नहीं होता था कि जो कुछ लिखा है, वह किसी लायक भी है, लेकिन छपकर आते ही मन आत्मविश्वास से भर उठा। मुझे लगा जैसे मेरी कहानी ही नहीं, मैं स्वीकृत हुई हूँ, मेरा अपना वजूद स्वीकृत हुआ— अपनी एक अलग और विशिष्ट पहचान बनाता हुआ वजूद।”⁵²

इस आत्मकथा का विश्लेषण करते हुए संवेग-54, जुलाई-2012 के अंक में राम प्रकाश कुशवाह ने लिखा है— “विमर्श को उत्तेजित करने की क्षमता के आधार पर देखें तो मन्नू भण्डारी की आत्मकथा ‘एक कहानी यह भी’ अधिक शिष्ट, संयमित और शालीनता से लिखी जाने के कारण कम उपयोगी है। फिर भी वह नयी कहानी युग के साहित्यिक परिवेश की ऐतिहासिक स्मृति को संरक्षित करने के कारण, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर और स्वयं मन्नू भण्डारी के जीवन और संस्मरण को संरक्षित करने के कारण महत्वपूर्ण है। मन्नू भण्डारी की आत्मकथा ‘एक कहानी यह भी’ नयी कहानी आन्दोलन के दौर के अतिमहत्वाकांक्षी परिवेश के साथ-साथ मन्नू भण्डारी और राजेन्द्र यादव के समस्यात्मक दाम्पत्य के बीच मीता की त्रयी के माध्यम से सृजनात्मक महत्त्व के कई खुलासे भी करती है। तनाव में ही सही, मन्नू जी ने अपनी कई खदानों के नाम-पते उजागर कर दिए हैं जहाँ से संवेदना रूपी पत्थरों से उन महान कृतियों की रचना हुई।”⁵³ आत्मकथा में रेखांकित उनके समस्यात्मक दाम्पत्य जीवन को विश्लेषित करें तो मनोवैज्ञानिक तथा चारित्रिक दृष्टि से प्रेम में माता और पिता को पाने का द्वन्द्व भी लगता है। विवाहोपरान्त मन्नू भण्डारी लेखकीय और पत्नी रूप में जीवन जीने लगती हैं। लेखन के लिए उन्हें राजेन्द्र जी ने प्रेरित किया पर उनके व्यक्तित्व का पत्नी रूप उसी क्रम में उनके विषय में कहती हैं कि— “किसी का भी वर्चस्व स्वीकार करना तो इनके अहं को गवारा ही न था।”⁵⁴ और आगे व पुनः कहती हैं कि—

“मैं जानती हूँ कि राजेन्द्र कहीं भी किसी भी तरह का हस्तक्षेप बर्दाश्त ही नहीं कर सकते..... न अपनी जिन्दगी में, न अपने काम में।”⁵⁵ इस तरह से मन्नू भण्डारी की आत्मकथा दो महान लेखकों, जो संयोगवश पति-पत्नी हैं, उनके अन्तर्द्वन्द्वों से उत्पन्न तनावग्रस्त जीवन का खुलासा है।

दोहरा अभिशाप (कौसल्या बैसंत्री)

कौसल्या वैसंत्री नारी पर हो रहे अत्याचारों को निःसंकोच अपनी आत्मकथा ‘दोहरा अभिशाप’ में व्यक्त किया है। एक पति द्वारा दी जाने वाली प्रताड़ना को वह बड़ी संजीदगी से कहती हैं। अपनी आत्मकथा की भूमिका में वह कहती हैं— “अस्पृश्य समाज में पैदा होने पर जातीयता के नाम पर जो मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ीं इसका मेरे संवेदनशील मन पर असर पड़ा। मैंने अपने अनुभव खुले मन से लिखे हैं। पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बरदाश्त नहीं करता। पति तो इस ताक में रहता है कि पत्नी पर अपने पक्ष को उजागर करने के लिए चरित्रहीनता का ठप्पा लगा दे।”⁵⁶ इनकी आत्मकथा एक व्यक्ति के स्त्री, दलित तथा गरीब की कथा है जिसमें वह दोहरा, तिहरा संघर्ष करती हुई दिखायी देती है। वैसंत्री कहना चाहती हैं कि स्त्री की परम्परागत जीवन शैली जिसमें वह ‘बचपन में पिता पर युवावस्था में पति पर तथा वृद्धावस्था में सन्तान पर आश्रित होती है, के पुरुषवादी सामंतवादी सोच से ऊपर उठकर व्यक्तिगत जीवन में स्वतंत्र रहना चाहती है। वह भी पुरुष के समान सुविधाएं और अपना अधिकार पाकर जीना चाहती है। लगभग सभी स्त्रियों की ऐसी ही स्थिति है किन्तु कहने का जोखिम कौन लेगा? इस संदर्भ में बैसंत्री आगे आकर अपनी बात को बेबाकी से कहती हैं— “मेरे जैसे अनुभव और भी महिलाओं को आए होंगे परन्तु समाज और परिवार के भय से अपने अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती और जीवन-भर घुटन में जीती हैं। समाज की आँखें खोलने के लिए ऐसे अनुभव सामने आने की जरूरत है।”⁵⁷ महाराष्ट्र की कहावत— “महार माँगों घर गाना और

ब्राह्मणों के घर पढ़ना-लिखना।⁵⁸ के मिथक को बैसंत्री चुनौती देती हैं और पढ़ लिखकर समाज से संघर्ष कर अपनी पहचान स्थापित करती हैं।

बैसंत्री जी अपनी आत्मकथा में फिजूल की बातों को आने नहीं दिया, उन्होंने सीधे सपाट शब्दों में अपने जीवन-संघर्ष को रेखांकित किया जो अत्यन्त प्रभावकारी है। माता-पिता ने गरीबी से जूझते हुए भी अपनी लड़कियों को पढ़ाया, उनके विवाह किये, उसके बाद भी उनकी कथा के केन्द्र में पति-कथा आ जाती है। उनका पति स्वतंत्रता सेनानी होने के बाद भी उनका सम्मान नहीं करता था। वे लिखती हैं- “पत्नी को वह स्वतंत्रता सेनानी भी एक दासी के रूप में ही देखता था।मैं खाना बन जाने पर खा लेती थी। तब उसने यह शिकायत मेरे भाई से की कि मैं उससे पहले खाना लेती हूँ। कोई जरूरी है कि पत्नी सबसे पीछे खाये। जिसे भूख लगे, वह खाये।⁵⁹ अन्ततः बात अलगाव तक पहुँचती है और कोर्ट से उसे 500 रु० प्रतिमाह का जीवन-निर्वाह भत्ता बाँध दिया जाता है। ऐसी विषम परिस्थितियों के बीच बैसंत्री ने अपने को संभाला और साथ ही लेखन के माध्यम से पुरुष के उस चरित्र का पर्दाफाश करती जहाँ वह हर तरीके से स्त्री को अपनी गुलामी का अहसास कराते रहना चाहता है। वह उसे मुक्त कभी नहीं देखना चाहता। इस तरह यह आत्मकथा लेखिका के लम्बे, संघर्षपूर्ण, कड़वे-मीठे अनुभवों से भरे जीवन के एक सिंहावलोकन के रूप में लिखी गयी है। प्रथम यह आत्मकथा एक दलित, दूसरी स्त्री होने के दंश को जीवन का एक सम्यक् और सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करती है। उस समय एक दलित स्त्री की शैक्षणिक समस्याओं को लेखिका ने अपनी आत्मकथा में बड़े सचेत ढंग से संजोया है। वे कहती हैं- “हमारे दरवाजे के पास लोग रात में टट्टी-पेशाब तक कर जाते थे, शरारत के तौर पर यह जतलाने के लिए कि हम क्यों पढ़ते हैं। माँ बड़बड़ाती हुई टट्टी-पेशाब साफ करतीं लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी।⁶⁰

बैसंत्री जब अस्पृश्य विद्यार्थी परिषद् की कार्यकर्त्री हुई, लोगों से मिलने-जुलने का सिलसिला बढ़ा तो बस्ती की औरतें भी ताने कसने लगीं— “इतनी बड़ी हो गयी है, थन लटक रहे हैं, शादी नहीं हुई, बूढ़ी होगी तब करेगी क्या ? कोई कहती— अरे, जाने दो। अभी तक क्या कोरी रह गई है ? इतने यार-दोस्त आते हैं घर में, तो क्या कुछ नहीं होता होगा ?”⁶¹ अन्त में लेखिका अपनी वैवाहिक सम्बंधों को भी ताक पर रखकर नारी के सम्मान अधिकार और उसकी अस्मिता, पहचान व अस्तित्व के लिए जीवन भर संघर्ष की ठान बैठी और ऐसे क्रूर पति को छोड़ अकेले जिन्दगी जीने को अमादा हो गयी। वह उच्च शिक्षित पति, लेखक ओर भारत सरकार के उच्च पदों पर आसीन, ताम्रपत्र प्राप्त, सेनानी की पेंशन मिलने वाले पति को भी छोड़ देती है। “पति ने कभी मेरी कदर नहीं की बल्कि रोज-रोज के झगड़े, गालियों से मुझे मजबूरन घर छोड़ना पड़ा और कोर्ट करना पड़ा।”⁶²

ऐसी कठिन परिस्थिति में स्त्री अस्मिता की लड़ाई लड़ने वाली लेखिका की आत्मकथा और भी संवेदनशील हो जाती जब उसमें नारी के साथ एक दलित नारी के सवाल भी आ जाते हैं, आत्मकथा की परम्परा व इतिहास में यह एक अकेली आत्मकथा है जो दलित स्त्री समाज केन्द्रित है इसी कारण इसका विशेष महत्त्व है। इसका मुख्य केन्द्र बिन्दु अस्पृश्य समाज के स्त्री की गाथा है। इसका सामाजिक, सांस्कृतिक और दलित चेतना युक्त राजनैतिक परिवेश इसे प्रामाणिक बनाता है। इन आत्मकथाओं को सम्मिलित रूप में देखें तो ये सभी लेखिकाएं कमोबेश अपने भीतर की स्वतंत्र स्त्री तलाशने की कोशिश करती नजर आती हैं। ये आत्मकथाएं इस दृष्टि से भी अलग और महत्वपूर्ण हैं कि इसमें केवल स्त्री-जीवन से जुड़े सुख-दुःख ही नहीं हैं बल्कि समाज की अन्य अनेक ऐसी विसंगतियों और त्रासदियों का वर्णन है जो मनुष्य-जीवन विकास में अवरोध पैदा करते हैं। इस प्रकार की आत्मकथाएं केवल स्त्री मनोविज्ञान का ही नहीं

बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश का भी आंकलन करती हैं। चाहे भाषायी मुद्दा हो या जातिगत, सभी मुद्दों पर खुलकर बहस करती नजर आती हैं।

रसीदी टिकट (अमृता प्रीतम) 1984

‘रसीदी टिकट’ अमृता प्रीतम की बहुचर्चित आत्मकथा है। जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई तो पढ़ने से महसूस किया गया कि यह आत्मकथा का कायाकल्प है। अमृता खुद कहती हैं— “कई घटनाएँ जब घट रही होती हैं, अभी—अभी जख्मों सी, तब उनकी कोई कसक अक्षरों में उतर जाती है..... लेकिन वक्त पाकर अहसास होता है कि ये बातें लम्बे समय के लिए साहित्य को कुछ नहीं दे पाएंगी— ये वक्ती आंधियाँ होती हैं।”⁶³ अपनी उम्र बिता चुकी वक्ती आंधियों को छांटते हुए और नई बातें यादों के रूप में जोड़ते हुए लेखिका ने आत्मकथा को नया और संक्षिप्त रूप दिया है। अमृता प्रीतम की यह आत्मकथा बताती है कि उसे नफरत के दायरे पर तरस आता है, उसे विभाजन ने बुरी तरह प्रभावित किया था कि ‘वारिस शाह’ जैसी कविता की रचना हुई। यह बताती है कि रचनाकार को कैसे अपनी आलोचना की परवाह नहीं करनी चाहिए, चाहे जमाना बैरी हो जाए। साहिर से करीबी और इमरोज से गहरी दोस्ती के बीच के वक्फे को भी अमृता ने खूबसूरती से सामने रखा है। 1960 लेखिका की जिन्दगी का सबसे उदास वर्ष था, जिन्दगी के कैलेन्डर से फटे हुए पृष्ठ की तरह। उन्हीं दिनों में लेखिका कहती है— “मैंने मर जाने का विचार कियाऐसे भीषण विचार में जब जरा कुछ कमी हुई, तो मैंने जीने के लिए अपना मन पक्का कर लिया, पर सोचा, उदासी को मैं अपना एक शाही लिबास बना लूँगी और हर समय पहने रहूँगी..... जिस दहलीज के अन्दर पांव रखूँगी, वह घर वैराग्य का स्थान बन जाएगा मेरे दोस्तों के पाँव मेरी उदासी के साथ—साथ चला करेंगे..... लोगों ने मुझे सलाह दी कि यह सब कुछ जो दुःखदायी है मैं भूल जाऊँ।इमरोज से दोस्ती थी, पर अनेक प्रकार की दुविधाओं में से गुजरती हुई जिन्दगी की सबसे उदास कविताएँ मैंने इस वर्ष लिखीं। उन दिनों का

एक अजीब सपना मुझे एक-एक अक्षर याद है.....।⁶⁴ लेखिका का जीवनानुभव बहुत ही संजीदगी व संवेदनापूर्ण है। यहाँ एक व्यक्ति की लगातार विस्तृत होती दुनिया भी है, जहाँ दुनिया भर के अदीब शामिल हैं और स्त्री की वह हकीकत भी जो उसे कमजोर भी बनाती है और मजबूत भी।

स्त्री आत्मकथा लेखिकाओं का मुख्य स्वर है रूढ़ियों, परम्पराओं, विषमताओं, पुरुषवर्चस्व के बीच अपनी अस्मिता की पहचान। यह नकारात्मक न होकर सकारात्मक और मूल्यपरक है। इनका चिंतन स्त्री को सामाजिक विकास की मुख्यधारा से जोड़ता है। इस दृष्टि से अमृता प्रीतम की आत्मकथा 'रसीदी टिकट' महत्वपूर्ण रचना है। वे लिखती हैं कि— "आत्मकथा को प्रायः चमकती-दमकती एकांगी सच्चाई समझा जाता है, आत्मश्लाघा का कलात्मक माध्यम, पर बुनियादी सच्चाई लेखक की अपनी आवश्यकता मानकर मैं कहना चाहूँगी, यह यथार्थ से यथार्थ तक पहुँचने की प्रक्रिया है।"⁶⁵ अमृता प्रीतम की एक खास पहचान यह है कि वह जो कुछ भी कागज पर उतारती हैं वह उनका सच तो होता ही है जिस समय में वह थी, आने वाले समय में भी वह उनका सच होने के साथ समय और समाज दोनों का सच हो जाता है। वे पंक्तियाँ हैं— "मेरी सारी रचनाएँ, क्या कविता और क्या कहानी और क्या उपन्यास, मैं जानती हूँ, एक नाजायज बच्चे की तरह है। मेरी दुनिया की हकीकत ने मेरे मन के सपने से इश्क किया और उनके वर्जित मेल से यह सब रचनाएँ पैदा हुई।"⁶⁶ प्रीतम जी सरकारी तंत्र की नाकामी का भी भंडाफोड़ अपनी आत्मकथा में करती हैं वे कहती हैं कि भारत का हर प्रांत पागलखाना बनता जा रहा है। 1986 के मार्च महीने में एक सरकारी कांफ्रेंस में आखिर में बोलते हुए कहती हैं कि— "हमारा इतिहास कहता है कि जब समुद्र मंथन किया गया, तो उससे चौदह रत्न मिले थे, लेकिन आज वक्त की जरूरत है कि हम अपने-अपने मन सागर का मंथन करें, और अपनी अपनी आचरण शक्ति का रत्न खोज लें।"⁶⁷

आत्मकथा में अमृता की रचना प्रक्रिया और उसके अन्तःसूत्र खुलते हैं तो पात्रों की अन्तर्कथाएं भी। जिन्दगी का भले ही कोई रफ़ ड्राफ़्ट न होता हो, अमृता ने यह साबित कर दिया कि आत्मकथा दोबारा लिखी जा सकती है और अगर वह खुद ही तराश दी गयी हो, तो कहना ही क्या। इमरोज का मुख पृष्ठ अमृता का जीवन-घट और गहरा देता है। “भले ही कहानी के हर पात्र के साथ लेखक का गहरा साझा होता है, पर एक दूरी हर साझे का हिस्सा होती है।”

अमृता प्रीतम की आत्मकथा ‘रसीदी टिकट’ के उद्धृत अंश, जो उनके शब्दों में उनकी समूची जीवनी का सार है। वह जानती थीं कि उनके मुक्त व स्वतंत्र व्यक्तित्व को पुरातनपंथी समाज पचा नहीं सकेगा, लेकिन फिर भी उन्होंने स्वयं को बांधना स्वीकार नहीं किया। एक पूरा विद्रोही जीवन जिया और स्याही में कलम डुबोकर बदलाव की इबारत रची। शताब्दियों तक उनका जीवन दूसरों, विशेष कर स्त्रियों को आज्ञादी की उड़ान भरने की प्रेरणा देता रहेगा।

अमृता प्रीतम जीवन के झंझावातों से जूझती रहीं। बचपन में सगाई और किशोरावस्था में विवाह के उपरान्त दो बच्चों की माँ लेकिन पारिवारिक बंधन भी उन्हें अधिक समय तक रोक नहीं सके। उन्होंने निजी समस्याओं को सिर पर रख, कालजयी साहित्य रचा। प्रेम भी किया और साहसी हो स्वीकार भी किया।

अमृता प्रीतम अपनी आत्मकथा में स्वतंत्रता के मायने को भी स्पष्ट करती हुई कहती हैं कि— “वह व्यवस्था, जो साधारण व्यक्तियों को भी जीवन का अर्थ दे, पर जिसमें किसी का व्यक्तित्व न खो जाए।”⁶⁸ इस तरह अपनी आत्मकथा में वे ‘व्यक्तित्व की तलाश’ करती हैं जो व्यक्ति की खुद पहचान हो। उनके लिए व्यक्ति का व्यक्तित्व एक अहम चीज़ है जिसे बनाए रखने के लिए उसे हर प्रयास करते रहना चाहिए। “समुद्र में तूफान उठता है, तो लहरे उसकी ख़बर देती हैं, लेकिन कई बार मन में

उठते तूफान की बाहर से किसी को ख़बर नहीं मिलती।⁶⁹ लेखिका का यह वक्तव्य उसके मन के भीतर उन विचारों की पाट को संकेत करता है जिसे आज के पुरुषवादी समाज ने उस पर थोप दिया है। अब आज की नारी दया, क्षमा की मूर्ति नहीं, करुणा की अवतार नहीं। नारी का मन ही क्यों जग की सारी ममता को आश्रय दें। निर्दयी पुरुषों की दुनिया में वह इतनी उदार नहीं। इस प्रकार स्त्री की सारी लड़ाई समानता और वजूद के लिए है। जिससे एक मर्तबा प्रेम हो जाए, फिर वह जीवन भर नहीं छूटता। अतीत की स्मृतियों से वह कभी रिक्त नहीं होता। प्रेम की मृत्यु हमारी आंशिक मृत्यु है। हर बार प्रेम के मरने पर हमारा एक हिस्सा भी हमेशा के लिए मर जाता है। जब साहिर की मृत्यु हुई, तो अमृता ने लिखा— “सोच रही हूँ, हवा कोई भी फासला तय कर सकती है, वह आगे भी शहरों का फासला तय किया करती थी। अब इस दुनिया और उस दुनिया का फासला भी जरूर तय कर लेगी।⁷⁰ अमृता प्रेम में रहीं और मुक्त भी रहीं। सच्चा प्रेम कभी बांधता नहीं है। वे प्रेम में और स्वतंत्र होती गईं। जब उन्हें इमरोज से इश्क हुआ, तो कई बरस उसके साथ रहीं। जीवन की धूप—छांव में दोनों एक दूसरे का हाथ थामे रहे। एक दूसरे पर कुछ थोपे बिना, सदा साथ बने रहे।

उम्र के जिस पड़ाव पर दूसरी लड़कियाँ गुड़ियाएँ सजाने अथवा घर सभालने के गुर सीख रही होती थीं, अमृता के मन में कई प्रश्न उबलने लगे थे। जातीयता और धर्म के नाम पर बने सामाजिक खांचे उन्हें उद्वेलित करने लगे थे। ग्यारह बरस की उम्र में अमृता ने ईश्वर के अस्तित्व का प्रश्न खड़ा कर दिया। उन पर धार्मिक पिता का दबाव था, समाज की अपेक्षाएँ थीं, लेकिन वे इन सबसे इतर हर रात, सामाजिक किलों से आज़ादी के सपने देखती। ऐसे ही एक सपने के बारे में लिखती हैं— “एक सपना था कि एक बहुत बड़ा किला है और लोग मुझे उसमें बंद कर देते हैं। बाहर पहरा होता है। भीतर कोई दरवाजा नहीं मिलता। मैं किले की दीवारों को उंगलियों से

टटोलती रहती हूँ, पर पत्थर की दीवारों का कोई हिस्सा भी नहीं पिघलता। सारा किला टटोल-टटोल कर जब कोई दरवाजा नहीं मिलता, तो मैं सारा जोर लगाकर उड़ने की कोशिश करने लगती हूँ।⁷¹ आगे वे पुनः कहती हैं— “तस्वीर चाहे किसी भी खास व्यक्ति की हो, यह सवाल नहीं है, जो अच्छे लगते हैं वे हर समय ख्यालों में रहते हैं, तस्वीरों में नहीं।” हम प्रतिक्षण दो समानान्तर जीवन जीते हैं— एक जो हमारे बाहर दुनियावी कोलाहल बनकर तैर रहा है, दूसरा— जो हमारे भीतर कुलबुला रहा होता है। जब इन दोनों जीवनों के मध्य असमंजस की लहरें उफान लेने लगती हैं, तो सहन करने की एक निश्चित सीमा के उपरान्त विद्रोह का अंकुर फूटता है। इस अंकुर से फूटता है जीवन का वास्तविक अर्थ और स्वयं के अस्तित्व का कारण। अमृता के व्यक्तित्व में जो साहस था, सामाजिक वर्जनाओं के विरुद्ध भावना थी वह बचपन के दिनों से ही उपजने लगी थी। अमृता जी लिखती हैं कि— “हम सभी जानते हैं कि इंसान और इंसान के दरमियान एक लम्बा फासला है, जिसे तय करते हुए लोगों की ज़िन्दगी के जाने कितने साल और उनकी कितनी कमाई बर्बाद हो जाती है।⁷²”

रसीदी टिकट का हर पृष्ठ बयां करता है कि कैसे अमृता ने एक स्त्री होते हुए, बन्धनों के बीच बंधनों का सशक्त विरोध किया। अन्याय और असमानताओं के खिलाफ लिखती-बोलती रहीं। एक स्त्री, एक माँ, एक प्रेमिका और एक लेखिका होने के बीच उलझती रहीं और निकलने को राह भी बनाती रहीं। उनके लिए जीवन यथार्थ से यथार्थ तक पहुँचने का सफर रहा। यथार्थ को पाने का हासिल आखिर कितनों का मकसद होता है और कितने उसे छू भर भी पाते हैं? अमृता जैसी साहसी लेखिका कागज पर काले अक्षरों में पूरा सुनहरा वृत्तांत व इतिहास रच डालती हैं और जब हम उन पन्नों को पलट-पलट कर उनकी छाया का महज अनुमान लगाते हैं तो वह एक कभी न मिटने वाली छाया होती है। तमाम उम्र वे कंकड़ों पर चली लेकिन वापसी नहीं की अपने सपनों को जिया। पूरी बाहों का जोर लगाकर सचमुच किले की नहीं पिघलने

वाली दीवारों से बहुत ऊपर उठ गयीं। धरती से ऊपर उठ, आसमां में उड़ान भरने लगीं। किले पर पहरा देने वाले उन्हें यूँ उड़ता देख घबराए, गुस्से में बांहे फैलाए रहे, लेकिन फिर कोई हाथ उन तक पहुँच नहीं सकता था।

पिंजरे की मैना (चन्द्र किरण सोनरेक्सा)

‘पिंजरे की मैना’ में चन्द्र किरण सोनरेक्सा जी अपने जीवन की संघर्ष यात्रा को बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति दी है। प्रखर व ओजस्वी व्यक्तित्व की धनी, तात्कालिक सामाजिक परिवेश जहाँ लड़कियों की शिक्षा का कोई प्रचार-प्रसार नहीं, उसमें वह अदम्य लालसा के साथ विपरीत पारिवारिक व सामाजिक परिस्थितियों में सामंजस्य बिठाकर अबाधगति से अपने सपनों को साकार करती हुई आगे बढ़ी। वे स्त्री शिक्षा की जीवित जुझारू मूर्ति थीं। 21वीं सदी में स्वावलम्बी लड़की के रूप में युग समाज सुधार एवं वैचारिक प्रगतिशीलता के बल पर नारी जीवन की वकालत की। अपनी वैयक्तिक अस्मिता अर्जित करना उनके समय व समाज के विपरीत था किन्तु सोनरेक्सा इन उलझनों में पड़ने वाली नहीं थी। “मामूली घरों के लिए मैं एक तेज-तर्रार लड़की हो गयी। उनका कहना था, आपकी लड़की बहुत पढ़ी-लिखी है, सारे गुण हैं, बहुत नाम पा लिया है। पर बहू हमारे लड़के के सिर पर पाँव रखकर आवे, यह हमें मंजूर नहीं। यानि पत्नी को हर हालत में पति से कम पढ़ा-लिखा और हर तरह से झुका होना चाहिए। सो मेरे सब गुण ब्याह के बाज़ार में अवगुण सिद्ध हुए।”⁷³ हमारा भारतीय समाज सदैव कुंठित भाव से ग्रसित होने के कारण स्त्री को शिक्षा से दूर रखता है। उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को वह स्वीकार करना अपनी हार समझता है। नारी शक्ति के भय से पुरुष सदैव अशंकित रहता है। ये अन्तर्विरोध इनकी आत्मकथा में स्पष्ट दिखायी देते हैं।

स्त्री के प्रति घर—बाहर कहीं भी उदार व्यवहार नहीं है, उसकी मौत को भी कलंकित किया जाता है। यह समाज की दूषित मनोवृत्ति है। बदनियती का शिकार होकर जीवन से हाथ धोने वाली को उसके चरित्र पर ही कीचड़ उछाला जाता है। लेखिका कहना है कि— “मैं देश के निम्नमध्यवर्गीय समाज की उपज हूँ। मैंने देश के बहुसंख्यक समाज को विपरीत परिस्थितियों से जूझते, कुम्हलाते और समाप्त होते देखा है। वह पीड़ा और सामाजिक आर्तनाद ही मेरे लेखन का आधार रहा है। उन सामाजिक कुरीतियों, विषमताओं तथा बंधनों को मैंने अपने पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। जिससे वह भी अपने प्रति सजग हों, उन बुराइयों के प्रति सचेत हो जो समाज को पिछड़ापन देती है। 75 साल का लेखन पिंजरे की मैना के साथ सम्पूर्ण होता है। और यह मेरी छियासी साल की जीवन यात्रा का वास्तविक दस्तावेज है।”⁷⁴ परम्परागत यातना और नई परिकल्पना के धुंधलके में संघर्ष करती हुई स्त्री आज अपने नये स्वरूप को गढ़ने का प्रयत्न कर रही है। जीवन की जिम्मेदारी से थके स्त्री—पुरुष आज के भारतीय समाज के लिए भी चुनौती है, परम्परागत मान्यताओं के साथ इन नई मान्यताओं के संघर्ष को सोनरेकसा ने अपनी आत्मकथा में बड़ी बारीकी से चित्रित किया है।

‘पिंजरे की मैना’ एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार से उतार—चढ़वों, अन्तर्द्वन्द्वों आर्थिक तंगियों के बावजूद एक सृजनशील महिला के जज्बों की आत्मकथा है। “यह एक ऐसी स्त्री की आत्मकथा है जिसके लिए परिवार की मर्यादा, पारिवारिक ढाँचे की सुरक्षा सर्वोपरि है, जो अपने पति की सब गलतियों को केवल इसलिए माफ करती है क्योंकि घर परिवार को त्यागकर अकेली जीने वाली स्त्री को समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है।”⁷⁵

अपनी गौरवपूर्ण, किन्तु असामान्य विशेष पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण ही एक निष्पक्ष एवं क्रांतिकारी लेखकीय विवेक तथा सामाजिक अन्तर्दृष्टि उनकी लेखन की

विशेषता है। जाति-निरपेक्षता की पारिवारिक स्मृतियाँ, आजीविका के लिए ब्रिटिश नौकरशाही का जीवन स्तर, लड़के-लड़कियों को समान रूप से शिक्षा प्रदान करने पर बल तथा सुधारवादी आर्यसमाजी संस्कार लेखिका के चेतन-अचेतन प्रारम्भिक व्यक्तित्व-निर्माण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वे अपनी आत्मकथा में स्पष्ट करती हैं कि- “वैसे भी अगर कोई मेरी जीवन यात्रा को समेटना चाहे तो वह घर-नौकरी, घर के चक्र में ही समाप्त हो जायेगी, क्योंकि तीन-तीन लड़कियों के ध्यान के साथ-साथ बड़ी गृहस्थी, पूरे संयुक्त परिवार की बड़ी बहू का उत्तरदायित्व निभाने का बीड़ा उठाए चलना बच्चों का खेल नहीं था।”⁷⁶ आगे वे पुनः कहती हैं कि- “आत्मकथा को यदि प्रतिदिन का रोजनामचा बना लिया जाए तो उसके विस्तार का कोई अन्त नहीं रहेगा और मैंने विस्तार को किसी साहित्यिक कृति की महानता का मानदण्ड नहीं माना। हमेशा की तरह बिना किसी लाग लपेट के, सीधी-सच्ची, दिल से निकली बात को दिल तक पहुँचाने की कोशिश की है। बस इतना सा अन्तर मेरी कृतियों और इस आत्मकथा में है कि वे जगबीती थी और यह आपबीती है।”⁷⁷ उनका मानना है कि- “आत्मकथा का केवल एक उद्देश्य होता है, अपनी जीवन यात्रा का, निष्पक्ष दर्शक की तरह पुनरावलोकन करना ‘पिंजरे की मैना’ उसी का फल है।”⁷⁸

वैवाहिक बिडम्बनाओं के बीच गौरव का अनुभव करती हुई लेखिका सदैव पति की आज्ञा शिरोधार्य करती रही, ‘कान्ति जी के हर फैसले को स्वीकार किया तथा ‘हर गतिविधि पर इन्हीं का नियंत्रण था’ यह संस्कार ग्रस्तता उनमें दिखायी दिया। वह लोकापवाद से भयभीत है- “जीजी! किसी के भाग्य को कोई नहीं मिटा सकता। मेरे भाग्य में एक झूठा पति लिखा है तो वही मिलेगा..... जो ब्याहकर ले जाएगा, वह जहाँ रखेगा, रह लूँगी; उसके घर का सब काम संभाल लूँगी; अपने वशभर उसकी सेवा करूँगी तो क्या वह दो रोटी नहीं देगा ?”⁷⁹ उनका यह कथन संकेत करता है कि एक जून की ‘दो रोटी’ पाने की आस में न जाने कितनी इस तरह की भारतीय स्त्रियाँ

अपनी कुर्बानी करती रहती हैं। सच्चाई तो यह है कि उसे दो जून की 'दो रोटी' भले न मिली हो किन्तु पति के अपशब्द, उसकी ऐय्याशियाँ और बौखलाए, पगलाए, बेवकूफ पति द्वारा चरित्रहीनता के झूठे आरोप झेले। जो कुछ भी उसने भोगा, सहा, निरपेक्ष भाव से नहीं, आहत होकर व जीवन पर्यन्त घर-बार की गाड़ी को खींचती रही। इस प्रकार यह आत्मकथा एक स्त्री के मर्मन्तिक पीड़ा का संचयन शब्दकोश हो गया। स्त्री जीवन बंधन है, स्वतंत्रता व अधिकार उसके खेमे से बाहर हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के इतिहास ने कभी उनके त्रिदोह, आक्रोश के स्वर को समझा नहीं यही कारण है कि चन्द्रकिरण सोनरेक्सा जी का मानना है कि— "इस जीवन सन्ध्या में मुझे यह अहसास जरूर हुआ है कि ऐसे ही अवसरों के समझौते हमारे जैसे लोगों को समझदार कम, और कमजोर ज्यादा सिद्ध किया है।"⁸⁰

'पति सेवा को स्त्री अपने जीवन का सबसे बड़ा धर्म समझती है', इस मिथक का चन्द्रकिरण सोनरेक्सा का खण्डन करती हैं। यद्यपि वे जीवन पर्यन्त पतिपरायण स्त्री बनी रहीं परन्तु अपमान का दंश झेलने, पशुवत जीवन जीने और जीवन का कोई अर्थ समझ में न आने की दशा में उन्होंने निर्णय किया। "बस अब और नहीं बढ़ने दूँगी यह सिलसिला, अविश्वास के धुंध में मानो मेरा दम घुटने लगा। मैंने निर्णय किया, मैं इनके साथ नहीं रहूँगी.... अपनी बेटी का पालन करने का सामर्थ्य मुझमें है।"⁸¹ 'पतिव्रता पत्नी का आत्मघाती' जीवन जीने वाली, पग-पग पर बीहड़ कंटीली राह रुक-रुक कर घावों के दर्दों का उभरना, स्वाभिमानपूर्वक स्वावलम्बी जीवन जीने वाली लेखिका किस प्रकार अपने व्यस्ततम जीवन में समय निकालकर लेखन कार्य किया वह उल्लेखनीय है— "जब किसी घटना, व्यक्ति अथवा परिस्थिति ने मेरे मन को छुआ, बस मेरी लेखनी निर्बाध स्वतः चलने में न समय न कुछ और बाधक हो सकता था। बस, कोरा कागज और कलम होना चाहिए हाथ में भाव, विचार और लेखनी निर्बाध स्वतः चलने में न समय न कुछ और बाधक हो सकता था। बस, कोरा कागज और कलम होना चाहिए

हाथ में भाव, विचार और लेखनी पानी की तरह स्वयं ही प्रवाहित हुए निश्चल, सहज, नवजात शिशु की तरह। काटने—छाँटने, तराशने, सजाने में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा।⁸²

इस तरह यह आत्मकथा पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वाह और कर्तव्य भावना में डूबी सौनरेक्सा के जीवन की उथल—पुथल, राग—द्वेष और यश—अपयश में पर्यवसित, एक बेवफा पति के लिए ममत्व एवं करुणा की सृष्टि करने वाली है।

लगता नहीं दिल मेरा—1997 (कृष्णा अग्निहोत्री)

कृष्णा अग्निहोत्री अपनी आत्मकथा के प्रथम खण्ड 'लगता नहीं है दिल मेरा' और दूसरा खण्ड 'और.....और.....औरत' इन दो खण्डों में उन्होंने पुरुष सत्तात्मक समाज में विपरीत स्थितियों में जीने को विवश स्त्री को कैसी विकट स्थितियों का सामना करना पड़ता है, इसका खुलासा किया है। इनकी यह आत्मकथा उनकी 'बोल्डनेस' की वजह से अधिक चर्चित रही। कई बार अपनी परिभाषाएं बदलती है, पति को तलाक देकर एक अन्य उच्चाधिकारी, जो तीन लड़कियों का पिता है, उससे प्रेम और फिर विवाह करके। यह सम्बंध भी बहुत दिनों तक नहीं चलता। अहं फिर आड़े आ गया। बच्चों की समस्याएं भी थी। उनके अनुसार— "मेरे जीवन में जितनी अधिक भागदौड़, हार—शिकस्त थी, उतना ही मेरा साहित्यिक लेखन सशक्त बुलन्द हो ऊँचाई तक बढ़ रहा था। मेरे पाँच कहानी—संग्रह व चार उपन्यास पूरे हो गए थे और मैं प्रत्येक पत्रिका में छप रही थी।"⁸³ किन्तु वैयक्तिक जीवन में कृष्णा जी बार—बार 'एक्सपैरीमेंट' करती हैं और असफल रहती हैं।

महिला आत्मकथा साहित्य एवं निजी जीवन के अन्तर्सम्बंधों को नवीनता देती है। युगों—युगों की चुप्पी व सन्नाटे को तोड़ने की शक्ति पैदा करती है। भारतीय स्त्री की आत्मकथा की यह विशेषता है कि इसमें स्त्री को उसकी जातीय सांस्कृतिक

पहचान से विछिन्न नहीं किया जाता। इससे स्त्री की जातीय पहचान, आकांक्षाओं एवं आशाओं के अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। छोटे-छोटे घटनाक्रमों को वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में जोड़ना और छोटी-छोटी घटनाओं को जोड़कर महाआख्यान तैयार करना इसकी केन्द्रीय विशेषता होती है, जो कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं दिल मेरा' में पूरी हिदायत के साथ दिखायी देती है। समाज की निर्मिति की ओर इशारा करते हुए लेखिका कहती है कि न जाने यह कैसा समाज है, जो एक समय बाद स्त्री को भी पुरुष व्यवस्था का हिस्सा बना देता है। आत्मकथा की भूमिका में स्वयं के विषय में लिखती हैं— "मैंने नंगे पैर सी जीवन यात्रा की है, सदैव कर्मपूजा प्रारंभ कर स्तुतियाँ गायी हैं कि आरतियाँ जलें अपनी जर-जर होती जिन्दगी को सरस्वती के पैरों पर रखकर निराशा से आशा का स्वर पकड़ा है। इसलिए सच व सच के सिवा कहीं झूठ में बनावट यहाँ नहीं है।"⁸⁴ ऐसी उद्घोषणा करते हुए अग्निहोत्री जी अपनी आत्मकथा लेखन की शुरुआत करती हैं। दाम्पत्य जीवन में सामंजस्य स्थापित न होने के कारण इनका संघर्ष और बढ़ता गया। दो खण्डों— 'लगता नहीं है दिल मेरा' तथा 'और....और... ..औरत' उनकी आत्मकथात्मक पुरुषविहीन, संघर्षमय पिता, भाई तथा पति आदि से वंचित औरत के जीवन की कौन-कौन सी कठिनाइयाँ हो सकती हैं, की आत्मकथा है। कृष्णा की औरत जहाँ लेखकीय दुनिया में बिल्कुल निर्भीक है, वही खण्डित दाम्पत्य के कारण अनेक पुरुषों द्वारा मानसिक रूप से प्रताड़ित हुई है। वह अन्याय, अत्याचार, अनाचार व अभिमान के तंज को तोड़ने के लिए उकसाती रहती है, और जब भी उन्हें जीवन में आनन्द आता है तो उसे भोग नहीं पाती। उनका मानना है कि औरतें यदि कारणवश शील, मर्यादा का परित्याग करती हैं तो उसे बुरा नहीं कहा जाना चाहिए। कोई पुरुष सौदा करके उन्हें नहीं पा सका। उच्छृंखलता व व्यभिचार को वह गलत मानती हैं, प्यार उनके लिए एक अलग ही अनुभूति है।

कृष्णा जी की आत्मकथा एक आत्ममुग्ध ऐसी औरत की कथा है जो अपनी विडम्बनाओं का बयान कितने ही विस्तार से क्यों न करें, उनकी अपनी निजी कमजोरियों पर कटाक्ष करती है। अपनी आत्मकथा में स्वयं को वह कई बार 'रूपवती' दोहराती है, जिसके चलते वह उपहासपूर्ण लगने लगता है। वे बार-बार अपने को निरीह, उपेक्षित, शोषित महिला के रूप में बड़े दुःखपूर्ण लहजे में कहने से नहीं भूलती है फिर भी प्रत्येक पुरुष उनकी सुन्दर देह के बाण से घायल हुआ है। चाहे वह आम पुरुष हो या खास। राजेन्द्र यादव, हिमांशु जोशी से लेकर उनके दूसरे पति श्रीकांत जोग तक इसी के सहारे उनके जीवन में आते-जाते रहे हैं। इन सबके बावजूद भी उनका संघर्ष उल्लेखनीय है जो एक महिला के साहस के परे होता है। उनके एक आईपीएस और दूसरा आईसीएस से विवाह करने के बाद भी उनकी अतृप्त कामनाओं और प्यार पाने की लालसाओं का बेअंत सिलसिला खत्म ही नहीं होता। सभी रिश्ते तो न जाने कैसे बड़ी तेजी से जुड़ जाते हैं, परन्तु उसका अंत भी अनेक शिकायतों के साथ बड़ी जल्दी समाप्त भी हो जाते हैं। इस तरह कहीं न कहीं कृष्णा के भीतर अपेक्षित सम्बंधों के निर्वाह की गुजारिश होती है और न दिखने पर वह आसानी से टूट भी जाता है। उनकी हरकतों के जायजा लेने से वे कभी-कभी जैसे सेक्स, प्रेम और तथाकथित मित्रता के घालमेल से निर्मित एक निम्फोमेनिक महिला की तरह हैं। वह कहती हैं— "अन्दर से महत्वाकांक्षी तो हूँ ही, उस पर आदर्शों का नशा भी रखती हूँ। अब दोनों का तालमेल बैठाना इतना सरल तो नहीं है।"⁸⁵ इसी आधार वक्तव्य पर वे अपने सारे सम्बंधों को जस्टिफाई करती हैं। इस तरह उनकी आत्मकथा में निजी पीड़ा एक निरीह औरत की पीड़ा, दर्द व कष्ट न रहकर उनके अपने अहम और बचकानेपन से आत्मग्रस्त अधिक दिखायी देती है। उनकी आत्मकथा स्त्री के सामंती शोषण को सही ढंग से सही रूप में उद्घाटित नहीं कर पाती वैसे उनकी पृष्ठभूमि सामंती वर्ग से रही है। यह उनका खुद का दुःख दर्द हो सकता है परन्तु सार्वभौमिक स्त्री शोषण या उसके दुःख दर्दों का बयान कतई नहीं करती है।

उनकी आत्मकथा की सार्थकता तब सिद्ध होती जब कृष्णा जी स्त्री 'मैं' से शुरू हो औरत के विस्तृत हम के दुःख-दर्दों में प्रवेश कर एक विस्तृत व्यापक रूप ग्रहण कर पातीं। उनके निजी सुख-दुःख थोड़ी बहुत संवेदना जरूर पैदा करते हैं किन्तु समग्र नारी जाति के चित्रण का अभाव रहता है। इन सबके बावजूद भी उनकी अपनी व्यथा ही का उजागर अन्य लेखिकाओं को सतर्क व सचेत करता, जिस कारण इसका महत्त्व असंदिग्ध है।

सुनहु तात यह अकथ कहानी-1999, सोने दे-1999 तथा एक थी रामरती-2012 (शिवानी)

जहाँ तक शिवानी की आत्मकथा- 'सुनहु तात यह अकथ कहानी', 'सोने दे' तथा 'एक थी रामरती' की बात है, शिवानी पूरी ईमानदारी से अन्तर्मन की बातों को उभारती हैं। उन्होंने जीवन में जो देखा भोगा उसे ही अपने लेखन का हिस्सा बनाया और एक स्त्री जब अपने अनुभवों को आधार बनाकर लिखती हैं तो उसका सारा का सारा लेखन अनिवार्य रूप से पितृसत्ता का विरोधी और नारी की विद्रोही चेतना से आप्लावित होगा। जिसमें बंधनों को तोड़कर आज़ाद होने की इच्छा, स्वतंत्र अभिव्यक्ति की कामना, समाज से न बराबरी को मिटाने की चाहत है। उनका अतिसंवेदनशील स्वभाव उन्हें जीवन के हर पहलू का गहन निरीक्षण और चिन्तन मनन कर देने पर विवश कर देता है। आर्थिक विवशता, मानसिक द्वन्द्व समझौतावादी प्रवृत्ति, स्वार्थ, दिखावा, दोहरी मानसिकता जैसी चारित्रिक दुर्बलता का चित्रण बड़े धैर्यपूर्वक करती हैं। नारी स्वतंत्रता और उसके अधिकारों की पुरजोर वकालत करती हैं। उन्हें स्त्री का पुरुष पर निर्भर रहना या उसके अधीन रहना गवारा नहीं। वे उन औरतों की भी खिंचाई करती हैं जो केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुषों के अत्याचार और हिंसा को सहन करती रहती हैं। उनकी आत्मकथाएं नारी के जीवन के विविध पहलुओं और उससे जुड़ी समस्याओं को केन्द्र में रखकर लिखी गयी हैं। उनका स्त्री चिंतन

चतुर्थ अध्याय

उनके भीतर विद्रोही चेतना के बीज का ही प्रसार है। सड़ी-गली रूढ़ियों और विषाक्त परम्पराओं से जूझते-जूझते जर्जर जीवन आसन्न मृत्यु के भय से इतना क्लान्त हो जाता है कि अतीत को एक बार फिर खींच कर दूसरों को दिखाने की इच्छा ही शेष रह जाती है और न ही अवकाश रह जाता है। आत्मकथा उतनी ही सच होती है जितना लेखक उसे दिखाना चाहता है अपना शत-प्रतिशत उसमें लिखता है या नहीं जहाँ तक शिवानी की आत्मकथा का प्रश्न है उन्होंने पहाड़ों के कल्चर, रूढ़ियों बुजुर्गों के संघर्ष, बुआओं के वैधव्य, विधवा जीवन, गरीबी का परिवार पर असर जैसे मामलों को हिस्सा बनाया गया है। 'किरपया भित्तर न आएँ यहाँ भुत्त रहता है' यह तख्ती उन्हें अपनी बुआ के दरवाजे पर इसलिए टंगी मिली क्यों कि भीतर उनके सात बेटों के पास पहनने के लिए कपड़ा नहीं था।

शिवानी जी संस्कृति के प्रति सचेत हैं। संस्कारों और परिवेश में बदलाव ने उनके संवेदनशील मन को तोड़ दिया था परन्तु लेखन ने उन्हें बिखरने नहीं दिया तभी वे यह कहती हैं कि अतीत में खाये गुड़-घी-दूध के व्यंजन उन्हें वर्तमान में स्विस चाकलेट की तुलना में अधिक स्वादिष्ट लगे थे। इसी प्रकार हाथ की मशीन से बनी आइसक्रीम, डाकू का राखी की कीमत चुकाना, पतिता (राजुला) का साध्वी रूप, सेवक लोहानी जी का वात्सल्य, वैधव्य शोक जैसे ढेरों फ्रेम हैं जिन्होंने अलग-अलग कोषों से शिवानी के जीवन में अनुभवों का निर्माण किया है। आत्मकथा का दूसरा भाग 'सोने दो' में मृत्यु के साथ साक्षात्कार के अनुभव हैं। प्रवासी होते बच्चों के अभिभावकों का दर्द है। माँ, जीजी, नाना, भाई, भाभी, सहेली, पति जैसे रिश्ते हैं जिन्होंने लेखिका की संवेदनशीलता के स्तर को और भी गहरा बनाया और लिखने का साहस दिया और आगे लिखती गयीं, लिखती गयीं..... लिखती गयीं.....और स्त्री जीवन का सब कुछ लिख दिया।

मुझे माफ करना (दिनेश नन्दिनी डालमिया)

लेखन को अपनी सक्रियता का आधार व स्रोत मानने वाली दिनेश नन्दिनी डालमिया अपनी आत्मकथा— 'मुझे माफ करना' को आत्मकथा के रूप में स्वीकारने में हिचकती हैं। उनका मानना है कि "अपने नकारात्मक अनुभवों को अभिव्यक्त करते हुए मैं अपने से जुड़े अन्य व्यक्तियों के निजी जीवन की गोपयनीयता का अतिक्रमण कर रही थी, जिसका मुझे अधिकार नहीं था। इसी अनाधिकार चेष्टा के अहसास के फलस्वरूप इस आत्मकथा को मैंने उपन्यास के रूप में प्रकाशित करवाया।"⁸⁶ वहीं कुछ न कहते हुए सब कुछ कहने का प्रयास, सब कुछ कहते हुए कुछ न कहने की सीमा बन जाता है। डालमिया स्वीकार करती है कि माँ को कैंसर की आशंका सुनकर अपने से काफी बड़े धनवान व्यक्ति की दूसरी पत्नी बनना भी स्वीकार कर लिया था क्योंकि उन्हें गरीबी से डर लगता है। यद्यपि आज भी महिला लेखन एक बड़ी चुनौती है फिर भी उसे हर स्थिति का सामना करने की सामर्थ्य उसमें निहित है। मर्द किसी गरीब और बेसहारा औरत की इज्जत ओ—आबरू से खिलवाड़ करता है फिर भी उसे पछतावा नहीं होता, वह उल्टा उसे बदनाम और जलील करता रहता है लेकिन खुद ढीठ बनकर उसी समाज के बीच बेशर्मी से रहता है। इस करतूत को डालमिया भलीभाँति पहचानती हैं और अपनी लेखनी से उन्हें बल प्रदान करती हैं, उन को प्रतिरोध की शिक्षा देती हैं जिससे उनका शोषण न किया जा सके यह सब प्रसंग आत्मकथा में अन्तर्निहित हैं।

जो कहा नहीं गया (कुसुम अंसल)

कुसुम अंसल की आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया' में एक उच्चवर्गीय, सम्पन्न घराने की विवाहित महिला के जीवन की कथा है जिसका पति व्यवसायी है, एवं बच्चे आत्म—निर्भर होने की प्रक्रिया में हैं। इस आत्मकथा की मूल समस्या उनका 'धनवान'

होना है। साथ ही लेखिका के अपने रचनाकर्म के दौरान प्रकाशन सम्बंधी आने वाली सभी समस्याओं का जिक्र भी किया है। उसके संघर्ष की पूरी गाथा इसमें विस्तार से पिरोयी गयी है। वे विसंगतियों से परिचित होती हैं और उसके निवारण के लिए आह्वान भी करती नजर आती हैं। कुसुम अंसल ने केवल सामाजिक परम्परा से ही बगावत नहीं की, साहित्यिक परम्परा से भी विद्रोह किया। उन्होंने अपने लेखन में हर कदम पर मोर्चा लेते हुए पितृसत्ता को चुनौती दी। नारी जीवन के विविध पक्षों का चित्रण करते हुए उस पर होने वाले अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई है। फिर चाहे वह कम उम्र में होने वाले विवाह हो, दहेज के लिए दी जाने वाली प्रताड़ना हो, दाम्पत्य जीवन की उलझने हों अथवा यौन-सम्बंधों की जटिलताएं। उन्होंने स्त्री जीवन की प्रत्येक समस्या पर बेखौफ़ कलम चलाया है।

जमाने में हम (निर्मला जैन)

21वीं सदी की एक महत्वपूर्ण आत्मकथा डॉ० निर्मला जैन की 'जमाने में हम' है। अपनी इस आत्मकथा में निर्मला जी ने देश के पाठकों के समक्ष साहित्यिक बौद्धिक जगत की एक ऐसी अकथ कहानी का चित्रण किया है जो जमाने में आत्मकथा के साथ ही साथ आजादी के बाद हिन्दी साहित्य की समीक्षा बन गयी है। यदि इनकी पुस्तक 'दिल्ली शहर दर शहर' के इस आत्मकथा के साथ जोड़कर पढ़ा जाए तो उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रमुख तीन महत्वपूर्ण कालखण्डों— आजादी से पहले का भारत, आजाद भारत तथा भूमण्डलीकरण के दौर में भारत को बहुत ही बेहतर ढंग से देखा-जाना जा सकता है। यह साहित्यिक जगत की उन तमाम उलझनों व गुत्थियों का भी समाधान करती है, जो न जाने कितने पिछले कई वर्षों से पड़े हुए हैं। उन्होंने अपनी आत्मकथा के माध्यम से कुछ प्रमुख सवालों को उठाती हैं जैसे— समीक्षात्मक लेखन क्यों बन्द हो गया ? काव्यशास्त्र की दिशा में लेखन क्यों बन्द हो गया ? बाद की पीढ़ी साहित्य के प्रति संवेदनहीन क्यों हो गयी ? क्यों समकालीन रचनाकारों के

बीच संवाद भंग हो गया ? 'जमाने में हम' अपने नाम को सार्थक करती हुई उन सवालों का जवाब भी देती आयीं हैं क्योंकि यह निर्मला जैन की कहानी नहीं, दिल्ली की कहानी है, साहित्यकर्मियों की कहानी है, प्रयोगवादी, छायावादी, नई कहानी, नयी कविता की कहानी है। संपादक, संपादन और प्रकाशक, प्रकाशन की कहानी है। यह गुरु-शिष्य के साथ-साथ साहित्य और राजनीति के सम्बंधों की कहानी है।

एक महिला की आत्मकथा और एक रचनाकार महिला की आत्मकथा निश्चित रूप से एक नहीं हो सकती। रचनाकार होना एक अत्यंत जिम्मेदारी का कार्य है। इसका निर्वाह न हो पाने के कारण ही महिला रचनाकारों की आत्मकथाएं वहाँ तक नहीं पहुँचती, जहाँ तक उनका रचनात्मक साहित्य पहुँच चुका है। हम जो चाहते हैं उसके खिलाफ लड़ना भी चाहते हैं और जिस व्यवस्था को तोड़ने की बात करते हैं उससे स्वेच्छा से जुड़ना भी चाहते हैं।

यही अन्तर्विरोध कहीं न कहीं आड़े आ जाता है सत्य तक पहुँचने में। आत्मकथा का सत्य 'व्यक्ति का सत्य' और 'समाज का सत्य' एक साथ इसलिए होना चाहिए। निर्मला जैन साहित्यिक जीवन की उन सभी चुनौतियों का खुलासा करती हैं, जिस कारण वह एक सजग साहित्यकार हैं। साहित्य की समीक्षा के साथ ही समाज की समीक्षा भी हो जाती है, यह बात 'जमाने में हम' से स्पष्ट दिखायी देती है। निर्मला जैन को यह बर्दाश्त नहीं कि जब हिन्दी आलोचना सार्थक, बहुआयामी सामाजिक सरोकारों से पटे और ज्वलन्त प्रश्नों से जुड़े महिला लेखन को मेनस्ट्रीम से काटकर हाशिए पर डाल देती है। इस तरह निर्मला जैन की आत्मकथा हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है जिसमें एक स्त्री के साहित्यिक संघर्ष के साथ हिंदी साहित्य की समीक्षा भी मिल जाती है।

कुछ कही कुछ अनकही (शीला झुनझुनवाला)

शीला झुनझुनवाला जी की यह आत्मकथा बहुत ही सहज एवं आसान है, भाषा बहुत सधी हुई और घटनाक्रमों का चित्रण कमाल की सजीवता लिए हुए है। इनकी आत्मकथा उनका एक मंज़ी हुई लेखिका का परिचय कराता है। आत्मकथा की भूमिका में उन्होंने कहा— “यह पुस्तक बीती हुई सत्य घटनाओं की सिलसिलेवार पेन्टिंग है। मैं तो सिर्फ वह आवाज, वह प्रतिध्वनि हूँ जिसे आप सुन रहे हैं।”⁸⁷ तात्पर्य यह है कि लेखिका अपने जीवन के यथार्थ को बड़ी ईमानदारी से संजोयी है। अन्याय, अत्याचार और उत्पीड़न को अपनी कथा में पिरोया है। अपने समय में शीला के दिल में जो भी बात आ जाती थी उसे कागज पर वह उतारना बुरा नहीं समझती थीं। उनकी आत्मकथा क्रमशः दस अनुच्छेदों— आहटें, दस्तकें, बम्बई प्रवास, विस्तार, प्रस्थान बम्बई से, आपातकाल, चुनौती, विविधा, राम तेरी गंगा मैली एवं एकता चलो रे में पूर्ण होती है।

आहटें में बचपन की स्मृतियों, साम्प्रदायिक दंगे एवं असहयोग आन्दोलन की आहटों को संजोया गया है। ‘दस्तकें’ के अन्तर्गत कानपुर से बनारस और फिर कलकत्ता तथा सामाजिक अन्तर्विरोधों के बावजूद एक रिश्ते का जन्म, पारम्परिक विवाह। प्रेम विवाह आदि का जिक्र किया गया है। इसी अनुच्छेद में उनके पति श्री टी०पी० झुनझुनवाला से किस तरह एक परिचय प्रेम में और फिर प्रेम विवाह में परिणित हुआ इसको भी उभारा गया है। प्रेम प्रसंग के मार्ग में आने वाली दुविधाओं, आत्मसंघर्ष, सर्जनाओं और पारिवारिक असहमतियों का वर्णन एक संघर्षपूर्ण घटनाचक्र को जन्म देता है। प्रेम सिर्फ उत्तेजना या लिजलिजी भावुकता नहीं होता, बल्कि दो व्यक्तियों के बीच एक उत्प्रेरक का कार्य करता है जो त्याग का चरम बिन्दु भी होता है। शीला जी का कहना है कि— “मेरे और ठाकुर के बीच में ऐसा ही रिश्ता था। एक दूसरे को प्यार करने से पहले हम एक—दूसरे के दोस्त थे। एक—दूसरे को प्यार करने के पहले हम

एक दूसरे को पसंद करते थे। विवाह के बारे में तो हमने बाद में सोचना शुरू किया।”⁸⁸

बम्बई प्रवास से उनके साहित्यिक जीवन की शुरुआत होती है। इसी दौरान उनका परिचय रामरिख मनहर, कैफी आजमी, नीरज, संगीतकार राजकमल, गुलशन नन्दा, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश आदि से होता है। उनकी आत्मकथा में संजय गाँधी एवं श्रीमती सोनिया गाँधी के साथ भी यात्राएं की हैं। जिस कारण उनका व्यक्तित्व एक मध्यवर्गीय परिवेश व वातावरण की सीमा को पार करता हुआ उच्चवर्गीय ऊँचाईयों को भी स्पर्श करता है। श्रीमती कुसुम अंसल के अनुसार— “शीला जी की आत्मकथा में उनकी आत्ममुग्धता और ठाकुर के प्रति उनका अनन्य प्रेम..... भक्ति के कगार को छूती गहरी लगन इतने अधिक पृष्ठों पर फैल जाती है कि लगता है यह आत्मकथा नहीं, उनकी श्रद्धांजलि जैसी है अपने ठाकुर के प्रति।जहाँ तक अन्य सभी पात्र हैं— भाई, मामाजी, सरोज, सास, कारोबारी मित्र, पड़ोस सभी को शीला जी ने व्यवहार के स्तर पर आस्थावान दृष्टि से कथा सूत्र में पिरोया है।”⁸⁹ लेखिका अपनी आत्मकथा में पति के जौहरों और बहादुरियों का इतना अधिक महिमा मंडित कर देती है जिससे उसका स्वयं का व्यक्तित्व दब जाता है और पति के व्यक्तित्व की परिधि पर आ जाती है।

उनकी आत्मकथा व्यक्तिपरक प्रेम की अनन्यता के मोह से उठकर अकेलेपन की सम्पूर्णता को जानना है। रूढ़ियों को भेदकर स्वतंत्रता की चिंगारियों के साथ-साथ परिवार में तालमेल बिठाने जैसी घटनाएं सार्थक संदेश देती हैं। शीला जी जिस तरह से अपनी आत्मकथा में निरन्तरता, अनवरतता एवं पठनीयता को बनाए रखा है, वह उनके संपादकीय अनुभव का नहीं, बल्कि लेखकीय कौशल का कमाल है। इस प्रकार के ‘कुछ कही, कुछ अनकही’ अपने आप में संयमित, मर्यादित, भावनात्मक, संवेदनायुक्त तथा जीवन के विभिन्न पहलुओं और सामाजिक, साहित्यिक, प्रशासनिक सरोकारों से जुड़ी हुई दिलचस्प आत्मकथा है। इसकी समस्त घटनाएं भारतीय नारी जीवन के उन

सभी पहलुओं को अंकित करती हैं जिसमें उनकी पहचान व अधिकार बांधा गया है; जिनसे वह मुक्त होना चाहती है।

शब्दकाया (सुनीता जैन)

हिन्दी साहित्य जगत में अपन अलग छवि के लिए जाने जानी वाली श्रीमती सुनीता जैन की आत्मकथा 'शब्दकाया' उनके जीवन की स्मृतियों, घटनाक्रमों और जीवनदर्शन को गढ़ने वाली रचना है। उनकी यह आत्मकथा मानवीय बोध और अनुभूत सत्यों को उद्घाटित करने में सक्षम है। इसकी आत्मकथा में आये सभी प्रसंग बिल्कुल यथार्थ की जमीन निर्मित करते हैं। यह आत्मकथा यौनिक वर्णनों का परहेज करती हुई एक सीधी, साधी, सहज एवं निर्मल जल के समान पारदर्शी है।

(राम सिंह) नौकर रामसिंह के प्रति मानवीय सहानुभूति रखने वाली जैन उदार और न्यायप्रिय व्यक्तित्व वाली स्त्री लेखिका हैं। यह घटना उनकी रचना का वाद तो ऊँचा कर ही देती है साथ-साथ उनके उज्ज्वल व्यक्तित्व का भी परिचायक है। कभी-कभी लेखिका को अफसोस भी होता था कि बच्चों को संभालना, घर को संभालना और भी अन्य कामों को करता हुआ रामसिंह उनकी ज्यादाती का भी शिकार हो रहा है। नौकर जब अस्पताल में भर्ती था, उस समय उसके पास कोई न होने पर नर्स की आवाज की इस मरीज के पास कोई घर का क्यों नहीं रहता, यह बात उन्हें बार-बार सोचने के लिए मजबूर कर दिया कि जो सबसे अधिक हमारा था, हम ही उसके घर के न हो सके। लेखिका को अपने इस कार्य के प्रति प्रश्नाताप भी हुआ। वह अपनी आत्मग्लानि से मुक्त होना चाहती है। लेखिका का कहना है कि— “आज तीस वर्ष बाद भी वहीं तो है जो लिखना रहा है मुझसे, इस लिखे का हर एक शब्द और इस तरह मुझे आत्मग्लानि से मुक्त करने के लिए अपने इस उपक्रम में वह लौह पुरुष अपनी ही कृति में अचल है। उसकी जिस काया को मैं बचा न सकी, उसके बदले यह शब्द काया मुझसे ले वह मुझ पर अन्तिम उपकार ही तो कर रहा है।”⁹⁰

वे शिक्षा के प्रति भी तटस्थ थी जिसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिका जैसे शहर में लेखन और रोजगार दोनों क्षेत्रों में सफल होती हैं। विदेश में प्रवास के दौरान वह आत्मबल से भर गयी और अपनी अब तक की जिन्दगी में उन्होंने पहली बार अपने आपको एक सबला के रूप में महसूस किया। वहाँ उसे केवल अपने को शिक्षिका ही समझ में आता है। आगे वे पति की प्रेरणा से अंग्रेजी में पी०एच०डी० भी कर लेती हैं।

भारत लौटकर इन्द्रप्रस्थ कालेज फिर अरविन्द कालेज, दिल्ली और तत्पश्चात् आई०आई०टी० में प्रोफेसर हो जाती हैं। इसके बाद उनकी अध्ययन की जिज्ञासा शान्त नहीं हुई और हिन्दी, संस्कृत के साथ अन्य भाषा और उसके साहित्य से परिचित हुई रामायण, महाभारत से लेकर कालिदास और सरस्वती वंदना तक कंठस्थ कर डाली थी जिससे उनका लेखन समृद्ध हुआ।

‘शब्द काया’ सुनीता जैन की एक ऐसी आत्मकथा है, जिसमें बगैर किसी शिकवे—शिकायत और बगैर किसी वाद—विवाद में फँसे हुए अत्यन्त पारदर्शी होते हुए जीवन, परिवार के, समाज, साहित्य, संस्कृति और आम आदमी से लेकर विशिष्ट व्यक्तियों तक उन्होंने अपनी कलम चलाया। आत्मकथा में सब कुछ बहुत ही सादगी और सम्पूर्णता के साथ छोटे, परन्तु मार्मिक वाक्यों द्वारा उन्होंने चित्रित किया है।

बूँद बावड़ी (पदमा सचदेव)

पदमा सचदेव की आत्मकथा ‘बूँद बावड़ी’ एक अलग तेवर की आत्मकथा है। ‘बूँद बावड़ी’ का महत्व इस अर्थ में अधिक है कि इसमें रचनाकार की विकास—यात्रा को नाटकीयता के साथ देखा जा सकता है। यह आत्मकथा उनके अपने जीवन और साहित्य का बेबाकी के साथ आत्म—साक्षात्कार कराती है। इस आत्मकथा के संदर्भ में कहा गया है कि— “पदमा सचदेव अपनी आत्मकथा ‘बूँद बावड़ी’ में इस धड़ल्ले से अपने घटनापूर्ण जीवन के विषय में बेबाक बयानी की है कि यह सहज ही हिन्दी की

सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा कही जा सकती है।⁹¹ लेखिका कच्ची उम्र में ही तपेदिक जैसे रोग की गिरफ्त में आ गयी थीं, जहाँ वे अकेली जीवन और मृत्यु से संघर्ष करती रहीं। लेखिका ने दुनिया की निम्न मानसिकताएं, तुच्छताएं और मानवीय उदारताएं बहुत ही गहरे रंगों में पन्नों पर उतारी हैं। पारिवारिक, सामाजिक और मानवीय सम्बंधों के एक भरे-पूरे संसार और उनके विरल विवरणों तक वे सहज ही पहुँच जाती हैं। यह आत्मकथा के साथ-साथ एक कथा कोलाज भी है, बल्कि स्मृतियों के घटाटोप से झरी कोई एक बूँद जैसे यादों की बावड़ी को देर तक तरंगित करती रहती है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कोई भी बात रहस्यमयी ढंग से न कहकर अस्तित्व हिला देने वाली सच्चाइयों के साथ सामने आती है। स्वयं पदमा जी स्वीकार करती हैं कि— “मैंने भी जिन्दगी का हर लम्हा पूरी तरह भीगकर जीने की कोशिश की है। इस पड़ाव पर आकर अगर घूमकर देखूँ तो वो सभी चेहरे याद आते हैं, जिन्होंने अपने स्नेह की बौछार में सराबोर करके आगे कदम उठाने की हिम्मत दी है। मिलने की घड़ियां और विदा होने के पल—दोनों ही भरी हुई बावड़ी की तरह उछल-उछलकर मेरी जिन्दगी को भिगोते रहते हैं। आज किसी भी बात का पछतावा नहीं है।”⁹² वे मानती हैं कि स्त्री को समझौता करना चाहिए, किन्तु अपनी अस्मिता एवं गरिमा को गँवाकर नहीं। वह अक्सर सोचती थी कि— “मैं शायरा हूँ। अपनी रोटी खुद कमा सकती हूँ। अगर मैं यह जिल्लत बरदाश्त करूँगी तो वे औरतें क्या करेंगी जो रोटी को भी मोहताज हैं।”⁹³

यह आत्मकथा एक ऐसी स्त्री की है जो विषम परिस्थितियों के झंझावातों से गुजरने के उपरान्त भी न तो विचलित ही होती है और न ही टूटती है। इसमें आम और विशिष्ट दोनों प्रकार के इन्सानों को अहमियत मिलती है। जिस बेबाकी और सच्चाई से पदमा जी ने अपने पहले इश्क को बयान किया, जो वास्तव में उन्हीं के बलबूते की बात है। वैसी साहसिकता और किसी लेखिकाओं में नहीं है।

विवाह के बाद साधारण से घर में सास का व्यवहार, सुखी विवाह का टूटता सपना और फिर बीमारी, एकाएक झटके से जीवन मृत्यु से जूझता अस्पताल की देहरी तक आ सकता है। अस्पताल की उन बदरंग दीवारों के बीच डूबती हुई सांसों से जूझती हुई दुर्बल पद्मा जी ने जीवन को व्यर्थ नहीं जाने दिया। उनके भीतर की लेखिका ने उनकी 'क्रिएटिव इंस्टिक्ट' ने उन्हें ही नहीं, उनके भीतर की जिजीविषा को बरकरार रखा। पद्मा जी अस्पताल प्रवास में भी भाग्यवान रहीं कि अब्बाजी और उनके परिवार ने उन्हें न केवल प्यार दिया मानसिक सम्बल भी प्रदान किया।

पद्मा सचेदव की आत्मकथा अपनी सम्पूर्ण रोचकता, पठनीयता और जिजीविषा से लवरेज होने के बावजूद एक निस्संगता और निस्पृहता के साथ आगे बढ़ते चलती है इनकी आत्मकथा में आम आदमी भी खास है और खास भी आम, उस भीड़ में सभी अपने हैं और कोई भी अपना नहीं, आत्मकथा से ज्यादा वह टूट-टूटकर स्मृतियों का कोलाज ज्यादा लगती है। इस तरह से 'बूँद बावड़ी' एक उफनती हुई स्मृतियों का सैलाब है जिसमें लेखक के साथ-साथ पाठक भी बहता चला जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्त्री लेखन इस बात का प्रमाण है कि आज की नारी बदल रहे समय, समाज और उसके विद्रूपों चुनौतियों के प्रति सजग-सचेत है। जहाँ देह मुक्ति व पितृ सत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति की आवाज उठी है वहीं स्त्री-पुरुष सम्बंधों में मैत्री और सौहार्द के लिए संघर्ष भी दिखायी देता है। स्त्री शोषण, बलात्कार की समस्या, आतंकवाद से अपने विस्थापन, ग्रामीण स्त्रियों की समस्याओं और स्वचेतना, रूढ़ियों, गलत मान्यताओं एवं परम्पराओं, बेड़ियों और व्यवस्था की अड़चनों से भिड़ती आज के चेतना सम्पन्न लेखिकाएँ अपनी समृद्ध व विकसित सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप सोच से साहित्य में अपनी अमूल्य व सार्थक भागीदारी निभा रही हैं। अपने भीतर झाँककर आत्ममंथन भी करती हैं कि आज के समाज में उसके सामने नई चुनौतियाँ भी हैं। जीवन की समस्याओं और जटिलताओं

को लेखन में उतारने लगी हैं। अब स्त्री केवल देह, भोग्या व पद्दलित नहीं बल्कि समाज के निर्माण में उसकी अहम भूमिका है एवं 21वीं सदी के संदर्भ में नारी समाज को दिशा निर्देशित करना भी है। उसकी आवाज नाम की पहचान, अस्मिता, अधिकार व स्वतंत्रता की है जिसमें महिलाएँ बढ़-चढ़कर सामाजिक व साहित्यिक स्तर पर भागीदारी सुनिश्चित करा रहीं है। उनकी प्रखरता व ओजस्विता का स्वर अब 'औरत नहीं चाहती निखालिए मर्द या औरत की दुनिया।' वह चाहती है इन्सानी दुनियां। एक-दूसरे के प्रति आदर, विश्वास और प्यार की दुनिया।

व्यवस्था में असंतुष्ट व्यक्ति व्यवस्था में परिवर्तन का आकांक्षी होता है और वह परिवर्तन के लिए संघर्ष करता है। भारतीय समाज में स्त्री को कभी भी एक मानव के रूप में मान्यता नहीं दी जो उसे मिलनी चाहिए। उसे पुरुष एक वस्तु ही मानता रहा है जिसके कारण मानव के रूप में उसकी चेतना का विकास नहीं हो सका। चिरकाल से उसे मानसिक रूप से दबाकर रखा गया और पुरुषवादी व्यवस्था से वह आतंकित होती रही है। किन्तु समय के साथ परिस्थिति में परिवर्तन आता गया उसमें भी आत्मसम्मान व गौरव की भावना धीरे-धीरे निर्माण होने लगा। आधुनिक काल तक आते-आते जीवन सम्बंधी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ गया। देश आजाद हो जाने के उपरान्त लोकतंत्र की स्थापना हो जाने एवं समता, स्वतंत्रता, विश्वबंधुत्व एवं उदारता, बौद्धिकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण स्त्री-पुरुष समानता की बात सामने आयी। स्त्री मुक्ति आन्दोलन समाज में स्त्री की स्थिति बदली और उसके विभिन्न रूप उभर कर सामने आये।

स्त्री लेखिकाओं ने अपने जीवन की सच्चाइयें को आत्मकथाओं में बड़ी संजीदगी के साथ उद्घाटित किया है। समकालीन परिवेश में आत्मकथा लोकतांत्रिक विद्या होने के नाते साहित्य जगरण में इसके महत्व को स्वीकारा गया। और एक स्वर में सभी

कहने लगे कि— 'स्त्री का मुक्त होना मानव भविष्य के स्वस्थ विकास के लिए' आवश्यक है।

(ख) हिन्दी में अनूदित महिला आत्मकथाएं

रचनात्मक अभिव्यक्ति की सतह पर स्त्री-दृष्टि विषयक नारी चेतना विभिन्न भाषाओं के साहित्य के महिला लेखन में आरम्भ से विद्यमान रही है। जिन्होंने अपने-अपने समय के परिपेक्ष्य में स्त्री-चेतना को अभिव्यक्ति किया है। आधुनिक युग तक आते-आते नारी की रचनात्मक भूमिका अत्यन्त सक्रिय और उसका कार्य क्षेत्र व्यापक होता गया और स्त्री रचनाधर्मिता के राजनीतिक, सामाजिक, लैंगिक वैश्विक परिप्रेक्ष्य समाने आने लगे और महिलाओं की राजनितिक चेतना, सामाजिक अन्तर्दृष्टि और युग बोध के चित्र उनकी आत्मकथाओं में बड़ी संजीदगी से आए हैं। भारत की सभी भाषाओं में स्त्रियां लेखन कार्य कर रही हैं, जिसका दूसरी भाषाओं में भी अनुवाद किया जाता रहा है और हिन्दी भाषा में भी अन्य भारतीय भाषाओं की महिला आत्मकथाओं का अनुवाद हुआ है। अन्य भाषाओं की आत्मकथाओं—खानाबदोश, मेरे आका, मेरी कहानी, नंगे पैरों का सफर, स्त्री उपेक्षिता, आदि प्रमुख हैं। भारतीय साहित्य में आत्मकथा को महिला लेखक ने एक नया रूप और एक नयी दिशा प्रदान किया। ये सभी लेखिकाएं पितृसत्तात्मक व्यवस्था, आर्थिक विवशता, मानसिक द्वन्द्व, से संघर्ष करते हुए दिखायी देती हैं।

वैसे एक भाषा से दूसरी भाषा में जब रचना का अनुवाद किया जाता है तो भावों को हू-ब-हू समझना कठिन होता है किन्तु कथ्य के स्तर पर समस्या नहीं है। रचना की मूल समस्या तो वही रहती है जो पहली भाषा में होती है। भाषायी अनुराग वह कारण है जिससे अन्तर दिखायी देता है। किन्तु मानव जीवन की व्याख्या में भाषा आड़े हाथ नहीं आती मैं प्रत्येक समाज की भाषा उसकी अस्मिता का संकेत है। मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा और मानवीय मूल्यों का प्रतिवादन हर भाषा-साहित्य का लक्ष्य है।

आज के समय में एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषा के साहित्य की उपेक्षा नहीं कर सकता है क्योंकि पूरा विश्व आज एक गाँव जैसा है। वैश्विक गाँव की अवधारणा विकसित होने से एक भाषा का साहित्य दूसरे भाषा में भी पढ़ा जाने लगा। यही कारण है कि कालान्तर में अनूदित रचनाओं का महत्व बढ़ता चला जा रहा है।

हिन्दी भाषा में अनूदित महिला आत्मकथाओं की केन्द्रीय समस्या वही है जो हिन्दी भाषा में लिखी गयी मूल आत्मकथाओं की है। सभी भाषाओं की आत्मकथाओं में नारी अस्मिता की तलाश की गयी है। सिर्फ भारत में ही नहीं वरन् समूचे विश्व में सभी भाषाओं में नारी आज एक महत्वपूर्ण मुद्दा, एक अहम मसला बन गयी है। उसकी संभावनाओं, उसकी उपलब्धियों और उसमें होते परिवर्तनों को साहित्य में पड़तालों के केन्द्र में है। समाज और सभ्यता के विकास की भावी धुरी अब पुरुष के साथ-साथ नारी के हाथों में भी आ चुकी है।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष एवं महिला सशक्तिकरण के बिन्दुओं को लेकर नारी जागरण एवं मुक्ति का शंखवाद भारत में ही नहीं वरन् विश्व में ध्वनित हुआ। उसने अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए विद्रोह की भावना को आत्मसात किया यही कारण है कि एक ही देश में एक ही काल में, आत्मकथा विधा में अनेक भाषाओं की महिला लेखिकाओं ने अपनी-अपनी आत्मकथाएं लिखीं। परिणामस्वरूप पाश्चात्य नारीवादी स्त्रियों जैसे वोल्टसन क्राफ्ट, वर्जीनिया वुल्फ, सीमोन द बोडकर, तस्लीमा नसरीन, आदि विश्व पटल पर उभरीं। वहीं भारतीय नारीवादी स्त्रियों में ताराबाई शिन्दे, महोदेवी वर्मा, अजीत कौर, तमिल अभिनेत्री खुशबू, तहमीना पर्थनी, कमलादास आदि ने अपने विचारों को अभिव्यक्त किया। उक्त लेखिकाओं ने बड़ी गम्भीरता और सूक्ष्म अवलोकन के आधार पर पुरुष वर्चस्व वाली पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जाँच परख कर उसकी घोर आलोचना की है। आज की आधुनिक प्रगति और पुरुषोचित मानसिकता के कारण समाज अब वैचारिक प्रगति के क्षेत्र में अपाहिज और बैकफुट पर

है। इस प्रकार सभी महिला लेखिकाएं अपने भीतर वह शक्ति पैदा कर रही हैं जिससे मर्द को अपने अनुकूल बना सकें। पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादा की रक्षा करते हुए विकास की दिशा में आगे बढ़कर अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकें।

कमलादास (मेरी कहानी)

कमलादास अंग्रेजी व मलयालम भाषा की भारतीय लेखिका थीं। उन्हें उनकी आत्मकथा 'माई स्टोरी' से अत्यधिक प्रसिद्धि मिली। कमला सुरय्या इनका पूर्वनाम था और वे मलयालम भाषा में माधवकुट्टी के नाम से लिखती थीं। 'मेरी कहानी' शीर्षक के नाम से उनकी आत्मकथा हिन्दी भाषा में अनुवादित है। 15 वर्ष की उम्र में विवाह हो जाने के कारण पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच उन्हें लिखने के लिए तब तक जागना पड़ता था जब तक कि पूरा परिवार सो न जाए। परिवार के सो जाने पर वे रसोई घर में अपना लेखन जारी रखतीं और सुबह तक लिखती रहतीं। वे उस समय चर्चा में आयीं जब उन्होंने अपने आत्मकथात्मक लेखन को 'माई स्टोरी' नाम से संग्रह किया। यह किताब इतनी विवादास्पद हुई और इतनी पढ़ी गयी कि उसका पन्द्रह विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ। इसकी बदौलत उन्हें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिली। वे अपनी आत्मकथा में इस संदर्भ का उल्लेख भी करती हैं। वे लिखती हैं—

“पढ़कर परेशान होने लगे मेरे रिश्तेदार, क्योंकि मैंने अपने प्रसिद्ध परिवार को लांछित किया था, अपने कानूनी पति के इतर किसी अन्य पुरुष से अपने प्यार का किस्सा अपने पाठकों को सुनाया। यहीं क्यों, मैंने तो यहाँ तक स्वीकार कर लिया था कि छैला किस्म के पुरुषों पर तो मैं मरमिटती रही हूँ।”⁹⁴ इतनी बेबाकी से अपने जीवन की सच्चाइयों को उजागर करने का साहस किसी और में नहीं दिखायी दिया है। इसी कारण आधुनिक भारतीय महिला लेखन में जो तस्वीर कमला दास की उभर कर आयी उस पर आज का समूचा स्त्री विमर्श गर्व करता है। एक साधारण गृहस्थ महिला अपनी सच्ची भावनाओं को जब अपनी पूरी ताकत और साहस के साथ लेखन में उतारती है

तो साहित्य की दुनियां में तहलका मच जाता है। कमलादास का लेखन इसकी गवाही है, जिसने दुस्साहस के चलते न जाने कितनी बदनामियों के कलंक झेले, लेकिन अपने पथ से विचलित नहीं हुई। “मेरी कहानी” में कमलादास ने विवाहेतर सम्बन्धी, प्यार पाने की नाकाम कोशिशों और पुरुषों से मिले अनुभवों को खुलेपन से व्यक्त किया है। इसमें जीवन को बिंदास अंदाज और साहसी ढंग से वर्णित कर कई विषयों पर ऐसी उन्मुक्त राय दी गयी है कि जिस पर लिखने से अधिकांश लेखक आज भी कतराते हैं। स्त्री की अंतरंग दुनियां को ‘बोल्ड’ ढंग से अभिव्यक्त करने वाली विश्व की यह एक मात्र आत्मकथा है।⁹⁵ साहित्य की दुनियां में ऐसी महिलाओं को एक वक्त तक बेहद शंकालु दृष्टि से देखा जा रहा है। और साधारण लोग तो इनके नाम से ही मुँह बिचकाते फिरते हैं। लेखिका लिखती है— “ऊँचें नायर घरानों की औरतें सेक्स का नाम भले ही नहीं लिया करती थीं, लेकिन सेक्स उनके लिए सबसे बड़ा हौवा भी था— हिंसा और खून-खराबे का प्रतीक सा।” इस तरह समाज की हकीकत को अपनी जिन्दगी को बयां करती हैं। लड़की की कम उम्र में अधिक उम्र वाले पुरुष से विवाह करने के फलस्वरूप होने वालों परिवारों को वह देखती हैं— “आम तौर पर पति की उम्र पत्नी से कहीं अधिक हुआ करती थी। सुहागरात को वह भूखे भेड़िये की तरह बेचारी बछड़ी पर टूट पड़ता।”⁹⁶ ऐसे बहुत से कारण हैं जिस कारण लेखिका उन नैतिक मानदण्ड को अस्वीकार कर देती है। जो समाज में आसानी से मान लिये जाते हैं।

“हमारे पुराणों में केवल एक ही ऐसी नायिका नज़र आती है, जिसका यौवन-जीवन अपेक्षाकृत शान्त था। वह है राधा, जो जमना-किनारे अपने सांवरे प्रेमी की बाट जोहा करती थी, परन्तु वह तो किसी और की पत्नी थी। इस नाते अवैध सम्बन्ध था इसका। हमारे यहाँ वैध सेक्स-संबंधों में हिंसा और जंगलीपन के सिवा कुछ भी तो अनुभव नहीं होता।”⁹⁷ यह नैतिक दृष्टि नश्वर मानवीय देह से पैदा होती है। लेखिका को विश्वास है कि आदर्श नैतिक दृष्टि जिसका सम्मान किया जाना चाहिए,

का निर्माण मनुष्य की आन्तरिक आत्म से होना चाहिए, और अगर कोई ऐसा करने में सामर्थ्यवान नहीं हो तो उसकी मानसिक चेतनाएँ उसकी नैतिक दृष्टि का निर्माण होना चाहिए। मेरी नजरों में समाज एक डरावनी डायन है। वह अपने गर्म कम्बल में नफरत के सौदागरों, झूठों विश्वासघातियों, लोभी-लालचियों और हत्यारे तक को बड़े प्रेम से छुपा लेती है। जो लोग इस कंबल की आराम देह गर्मी से नफरत करते हैं उन्हें बाहर ठिठुरने के लिए छोड़ दिया जाता है। अगर मैं झूठ बोलती, नकली चेहरा दिखाती, विश्वासघात करती और नफरत फैलाती तो मुझे भी नैतिकता के इस आरामदेह गर्म कंबल की पनाह मिल सकती थी। लेकिन मेरे गले में अटकी सच्चाइयां कभी बाहर प्रकाश में नहीं आती। शादय मैं यह न कह पाती कि— “उसका हाथ धीरे-धीरे मेरी जाँघ के नीचे तक सरसराने लगा। मैं चौंकी अरे, यह क्या हो रहा है। हालाँकि कई पुरुष मुझसे प्यार कर चुके थे, लेकिन किसी ने सेक्स की इच्छा व्यक्त नहीं की थी।”⁹⁸

लेखिका जब अपने प्रेम सम्बन्धों को अपने पति से शेयर करती है तो उसका पति कहता है कि—“ यह तो अपने सिवा किसी को प्यार कर ही नहीं सकता। और तू तो अभी, हमेशा बच्ची ही रही। ठीक है, प्यार-प्यार का खेल खेलना चाहती हो तो खेलो, लेकिन कुछ तो सोच लिया करो कि किससे खेलूँ। मैं नहीं चाहता कि जीवन में तुम कभी कोई ठोकर खाओ।”⁹⁹ लेखिका पुरुष प्रेम की वृत्ति का खुलासा कर रही है कि वास्तव में कोई भी पुरुष किसी एक से सदैव प्रेम नहीं करता। पुरुषों के भ्रमर वृत्ति को स्त्रियां पसंद नहीं करती उनका कहना है कि यदि पुरुष के लिए जब कोई मर्यादा या अनुशासन यौन सम्बन्धों में निर्धारित नहीं है तो स्त्री के लिए ही ऐसा क्यों? उनकी भी अपनी भावनाएं व इच्छाएं होती हैं, जो वह भी जीना चाहती है। पुरुष कई स्त्रियों से प्रेम भी कर लेता है किन्तु वह पत्नी से एकानिष्ठ पतिव्रता की मांग करता है।

एक लेखक की पहली और सबसे बड़ी शर्त यही है कि वह अपने आपको उन कसौटियों पर खरा उतारे, जो वह समाज से चाहता है, यानी स्वयं को उस चूहे के

रूप में रखे जिस पर परीक्षण किये जाते हैं। उसे जिन्दगी के अनभवों से कभी नहीं भागना चाहिए। उसे अपने आपको कुहरे की ठिकुरन और आग की आँच के सामने खड़ा कर देना चाहिए। उसके पांवों को कभी आराम नहीं करना चाहिए। यही विशेषता उनके लेखन में निरन्तरता के साथ पर्यवसित होती रही है।

अजीत कौर (खानाबदोश)

प्रसिद्ध पंजाबी कथाकार अजीत कौर की आत्मकथा 'खानाबदोश' न तो उस तरह की आत्म रचना है, जिस तरह की अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट', दलीप कौर खिवाणा की 'नंगे पौरों का सफर' या कमलादास की 'मेरी कहानी', न ही यह हरिवंश राय बच्चन की 'क्या भूलूँ, क्या याद करूँ' जैसी बांध लेने वाली कृति है। उग्र की 'अपनी खबर' जैसी भी नहीं। 'खानाबदोश' उस तरह का आत्मकथात्मक उपन्यास भी नहीं, जिस तरह का मराठी में दया पवार ने 'अछूत' और आनंद यादव ने 'जूंझ' लिखा या रामनगरकर ने 'रामनगरी', बल्कि इसे तो राजेन्द्र यादव के आत्मकथ्य 'मुड़-मुड़ के देखता हूँ' की तरह अव्यवस्थित तरीके से टुकड़ों-टुकड़ों में एक-दूसरे से असम्बद्धप्राय आत्माभिव्यक्तियों का समुच्चय कहना ज्यादा सही जान पड़ता है, यही कहना ही अधिक समीचीन है, क्योंकि आत्मकथ्य का न सिर्फ पारम्परिक ढांचा यहाँ से गायब है, बल्कि इसमें वैसे अनुशासन का भी अभाव है, जैसे एक सुगठित आत्मकथा में होना चाहिए। यह एक ऐसी स्त्री की आत्मकथा है, जिसने खुद भारतीय स्त्री के बंधे-बंधाए पारम्परिक ढांचे को तोड़ने का जोखिम ही मोल नहीं लिया, जिन्दगी में उसकी भरपूर कीमत भी चुकाई। नारी जीवन से जुड़े अनेक पक्ष अपनी सम्पूर्ण विद्रूप पीड़ाओं के साथ उकरे हैं।

अजीत कौर आजादी के बाद की पंजाबी की सबसे उल्लेखनीय एवं चर्चित साहित्यकार मानी जाती हैं। कौर का लेखन जीवन के ऊहापोह को समझने और उसके यथार्थ को उद्घाटित करने की बेहद ईमानदार कोशिश है। इनकी आत्मकथा में केवल नारी का संघर्ष और उसके प्रति समाज का असंगत दृष्टिकोण रेखांकित होता है बल्कि चतुर्थ अध्याय

सामाजिक और राजनीतिक विकृतियाँ और सत्ता के गलियारे में व्याप्त बेहया भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के लिए उन्होंने बहुत ही संघर्ष किया। साथ-साथ समाज के गरीब तबकों झुग्गी के बच्चों और स्त्रियों के लिए भी खुली लड़ाईयां की है। नारी के वेश्यागमन जीवन की आरे संकेत कर लिखती हैं— “वेश्याएं तो हर जगह एक जैसी ही होती हैं। एक ही पेशा पर अजीब बात है कि हर शहर के कोठों का अपना ही जायका होता है— अपनी ही तहजीब, अपना अलग अंदाज! हर जगह की वेश्या की अलग टुमक है, अलग नखरा, अलग रंग।”¹⁰⁰ इस तरह का कथन बंबइया दोस्त का है जो महानगरीय जीवन में महिलाओं की आर्थिक कमी देह व्यापार के लिप्त किये हुए हैं। पुरुष समाज अपेक्षा से अधिक सुन्दर और आनन्द देने वाली स्त्रियों की तलाश में लगा रहता है किन्तु जैसे ही वह उसके घेरे में आती, तो न जाने कितने नये मुहावरे उसके लिए गढ़ देता है। झुग्गी के बच्चों के संदर्भ में लेखिका लिखती है— “बच्चों के बचपन में इस खानाबदोशी की बदहवास बेघरबारपन था। उनके शहद जैसे बचपन में यह अजीब उजाड़पन, और बेघरपन, और बदहवासी, नीम की सी कड़वाहट की तरह घुल गई थी।”¹⁰¹

अजीत कौर की ‘खानाबदोश’ पंजाबी की ऐसी आत्मकथा है, जिसकी तुलना भारतीय भाषाओं की किसी भी आत्मकथा से नहीं की जा सकती है, क्योंकि इसमें अजीत कौर ने खुद को कथा का केन्द्र न मानकर अपने आस-पास बहते जीवन के अवारा दरिया को उसकी समूची इयत्ता के साथ पकड़ने की कोशिश की है, जिसमें उनकी अपने स्त्री जीवन की कथा भी शामिल हो गयी है। अजीत कौर ने यहाँ जिन्दगी को अपने तरीके से जिया और जाना है। जीवन की जिन समस्याओं का सामना उन्होंने किया उसका बाकायदा जिक्र करती हैं। जीवनगत अनुभवों की उपेक्षाकर लेखन सम्भव ही न था। वे अपने जीवन की यंत्रणा को उकेरती, साथ ही आस-पास के लोगों के जीवन को भी उद्घाटित करती हैं। जिन्दगी की सच्चाई को लेखिका कुछ इस तरह

बयां करती है— “दर्द ही जिन्दगी का आखिरी सच है। दर्द और अकेलापन। और अपना दर्द साझा कर सकते हैं, न अकेलापन। अपना—अपना दर्द और अपना—अपना अकेलापन हमें अकेले ही भोगना होता है।”¹⁰² वह यह भी कहती है— “मुझे मालूम है, मैं मुसीबत के वक्त चीखकर किसी को मदद के लिए बुला नहीं सकती, जब तक वह मेरा बिल्कुल अपना नहीं।” लेखिका नारी जीवन के दर्द, अकेलेपन साथ ही दूसरों द्वारा उत्पन्न की गयी चित्कार के शांति के लिए वह किसी से भी शेयर नहीं करती क्योंकि वह जिस व्यक्ति से दुःख पाती उसे सार्वजनिक नहीं किया जा सकता है।

समकालीन चेतना का प्रतिनिधित्व करते हुए नारी जीवन से सम्बद्ध महिला आत्मकथाकार अजीत कौर जब अपने हाथों में कागज और कलम से उठाती हैं तो उनकी कलम धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक अंधविश्वासों, और सामंती संस्कारों के न जाने कितने किले ढहते चले जाते हैं। लेखिका मुआं की बीमारी का जिक्र करते हुए लिखती है —“उसके खाने—पीने के बर्तन अलग थे। उसकी खाट पर कोई नहीं बैठता था। सर्दी के मौसम में वह सारा दिन छत पर लेटी रहती रात को सोने वाला कमरा भी उसका अलग था, दूसरी मंजिल पर। जिस तरह के कमरे में हमारे घर में गेहूँ और प्याज पड़े हुए थे।”¹⁰³ इस प्रकार स्त्री की अस्तित्व की लड़ाई स्त्री को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई का संकेत करते हुए इस आत्मकथा का सारा ताना बाना बुना है।

अजीत कौर ने लिखा है कि— “इतने बरस, जब भी जिन्दगी की भयानक तकलीफ और संताप से वास्ता पड़ा, लाचारी और मजबूरी की जब भी शकल देखी, मौत की तरफ कदम—कदम जाते किसी के पांव देखे, कलेजा पिघल उठा है। शायद इसलिए कि बहुत पहले, जब मन बेहद कोमल होता था और चलती जिन्दगी की धमक मन की नर्म मिट्टी में कुआं खोदती चलती थी तो मूआं की मौत ने मन को खारा समंदर बना दिया। उस उम्र में, जब अभी मुश्किल से नौ—बरस की थी, मुआं की सगी माँ और सगे बाप के हिसाब—किताब लगाकर किए मुआं के मौत के फैसले से

खौफनाक नफरत पैदा हुई थी। उसके बाद हिसाब-किताब से जीना मेरे लिए गुनाहें – अब्बल हो गया। “और भारती समाज में बिना हिसाब-किताब के जाने वालों का हश्र, ‘खानाबदोश’ से कम तो क्या ही होता है।”¹⁰⁴ जो भारत विभाजन के दर्दनाक हादसे से लेकर अब अद्यान्त भटकती, टहलती, घूमती ही रही, क्योंकि अजीत कौर को हमेशा लगता रहा कि ‘राह भूलकर ऐसी सड़क पर आ गई हूँ, जिसकी वीरानगी और आवारगी मेरे अन्दर आहिस्ता-आहिस्ता टपक रही है। भीड़ से अलग एक सड़क।

भारतीय समाज ऐसी स्त्री को बर्दाश्त नहीं कर सकता, शायद बर्दाश्त कर सके होते तो अजीत न तो अजीत कौर होतीं, न ही इस्मत चुगताई हो पाती। न ही अमृता प्रीतम की कलम इस कदर बुलन्द होती कि यहां के लोग उसे बर्दाश्त ही ने कर पाते, लेकिन उन्हें बर्दाश्त तो इस मुल्क के लोगों ने किया ही और अब तो आदर के साथ स्वीकार भी कर लिया है। वह चाहे बचपन में मूआं की मौत हो, बलदेव से बिछड़ना, असफल विवाह, बेटी कंडी का फ्रांस में जलकर मरना, बाद में ओमा के साथ चला लंबा प्रेम प्रसंग, हर कहीं अजीत ने अपनी जिजीविषा का परिचय देते हुए अपने अकेलेपन से उबरने की कोशिश की और किया हर कहीं खुद्दार बने रहने का साहस, जो उनके लिए स्त्री से ऊपर उठकर व्यक्ति बनने की प्रक्रिया का हिस्सा रहा। लेखिका अपनी आत्मकथा में लिखती है— “मौत को मैंने देखा नहीं था, सिर्फ उसका नाम सुना था। मूआँ मर गई—और मुझे लगा था, जैसे अब रात नहीं होगी दिन नहीं चढ़ेगा। अपने कमरे के कोने में बैठकर मैं कितने ही दिन रोती रही थी। जब डर लगता कि कोई देख लेगा, तो ऊपर बरसाती में जाकर रोती। एक अजीब, बदहवास उदासी भी, जिसका चेहरा गायब था। न समझ आने वाली तकलीफ। अकुलाहट। गुस्सा, कि सारा कुछ उसी तरह क्यों चले जा रहा था – दिन-रात..... रसोई में बनने वाली सब्जियाँ और रोटी..... दारजी के मरीज.....सोना जागना, नहाना, खाना स्कूल जाना।”¹⁰⁵ ऐसी संजीदगी के साथ अपनी दैनिक जीवन यात्रा को कैसे झेलते हुए पूरा करती है,

वह किसी अन्य के लिए सम्भव नहीं था। किसी भी भारतीय नारी के जीवन की समस्याओं को बड़ी गम्भीरता से समेटती है।

मेरे आका (मोजेज माइकल)

पाकिस्तान की अंग्रेजी लेखिका 'तहमीना दुर्रानी' की आत्मकथा 'My Fuedal Lord' (माई फ्यूडल लार्ड) बहुत ही प्रसिद्ध रचना है। इस आत्मकथा को 'मेरे आका' शीर्षक से मोजेज माइकल ने अनुवाद किया है। अन्य कई भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। लेखिका आत्मकथा में कहती है कि— "मेरे अब्बाजान, भाई और नजदीकी रिश्तेदारों के सिवाय, मर्द लोग मेरे पराये थे, और शुरूआती क्षणों से ही मुझे मर्दों से दूर रहना सिखाया गया था। मेरे बचपन में ऐसी हिदायतों की फेहरिस्त बहुत लम्बी थी कि मुझे क्या-क्या नहीं करना है, और इन सब का मकसद मेरे और मर्दों की दुनियां के बीच एक अलंघनीय दूरी बनाए रखना था जैसे, क्रीम पाडडर या नेलपॉलिश का इस्तेमाल मत करो। लड़कों की तरफ मत देखो। नए ज़माने की सहेलियाँ मत बनाओ और ऐसी किसी भी लड़की से दोस्ती मत करो जिसका कोई बड़ा भाई है। बिना खास इजाज़त के लिए या अपनी आया के बगैर किसी दोस्त के घर मत जाओ। कभी अकेली मत जाओ। नौकरों के साथ रसोई में खड़ी मत रहो।"¹⁰⁶ लेखिका ने एक मुस्लिम समाज के भीतर स्त्रियों के लिए तय सभी बंदिशों को बड़ी निर्भीकता से उद्घाटित किया है। एक सामंती व्यवस्था के भीतर स्त्री जीवन जीना कितना दुरुह होता है, उसे तहमीना की आत्मकथा को पढ़कर अच्छी तरह से जाना जा सकता है। आत्मकथा में लेखिका ने अपने जीवन अनुभवों के द्वारा जिन्दगी के बेशुमार हकीकत पहलुओं की अक्कासी की है। उनके सभी अनुभव जीते जागते, जमाने के नब्बाज, दुनिया की अमल ओ हरकत पर तनकीदी नजर रखती हैं, सोचती है, समझती है। मसाइल से जद्दोजहद करती है और उनका हल भी तलाश करती नजर आती हैं। एक मुस्लिम महिला को चहारदीवारी के भीतर कैसे कैद कर रखा जाता है, जीवन की

इन जटिलताओं के बीच वह कैसे जीवित रहती है, लड़ती, झगड़ती, एवं संघर्ष करते हुए अपनी अस्मिता, अधिकार व पहचान के लिए प्रतिबद्ध है, आत्मकथा में बयां है।

फिर समाज में पुरुषों के लिए विवाह की कोई सीमा व गिनती सुनिश्चित नहीं ऐसे माहौल में लेखिका स्वयं के विषय में लिखती है कि— “मुस्तफा खर की पाँच पत्नियों, जिन्होंने चुपचाप पीड़ा और अपमान को सहा, जबकि वह बिना किसी आत्म हानि के मुक्त हो गया, उसकी छठी पत्नी के रूप में मैं उसको उत्तरदायी ठहरा रही हूँ। स्वयं मुस्तफा खर के लिए मैं चाहती हूँ कि ये पुस्तक दर्पण का काम कर सके जिसे वह अपने रूपों का मनुष्य पति, पिता, नेता और मित्र प्रतिबिंब देख सके।”¹⁰⁷ इस तरह इनकी आत्मकथा उस संकीर्ण समाज की उपज है जिसमें अनावृत्त परिवार के कष्टों को झेलना पड़ा है। लेखिका इन सभी परिस्थितियों में अपने धैर्य को खोने नहीं दिया, और हर हादसों का सामना करने के लिए पर्याप्त शक्ति और साहस जुटाती रही जिसके बलबूते वह हर गलत का बहिष्कार और सही का समर्थन करती है। दुर्गामी का सपना है कि— “मेरे बेटे कभी भी दुर्बल को उत्पीड़ित न करें और मेरी बेटियाँ उत्पीड़न से लड़ना सीख सकें।”¹⁰⁸ इस प्रकार की चाहत लेखिका के स्वयं बेटे व बेटा के प्रति न होकर सामंती व्यवस्था में जन्म लेने वाले सब के लिए है। वह चाहती हैं कि समाज का हर व्यक्ति शोषण मुक्त व स्वतंत्र हो जो अपना मनुष्य जीवन बेहतरी से जी सके।

समाज के भीतर व्याप्त यौन सम्बंध की बिडम्बनाओं को भी लेखिका ने खुलासा किया है। अपनी आत्मकथा में लिखती है— “एक रात मुस्तफा ने मुझसे शारीरिक सम्बन्ध बनाना चाहा। उसके रूख से मैं समझ गई कि वह मानने वाला नहीं था। मुझे समर्पण करना ही था। मैंने अपने आपको उस पल से अलग रखकर अपनी नफरत पर काबू किया। मैं उसके कंधे के ऊपर से शून्य में ताकती रही और खुदा से दुआ करती रही कि उसे सजा दे। यह जिना है, खुदा। आपने मर्द से मना किया है कि वह एक ही समय में दो बहनों के साथ जिस्मानी सम्बन्ध न बनाए। यह आपकी कुरान में लिखा

है। अगर यह नियम आपने बनाया है, तो आप मेरे साथ दोबारा यह नहीं होने देंगे। इस आदमी को आइंदा मुझे कभी मत छूने देना। कभी वह आपकी हुक्म उदूली करने की गुस्ताखी न करने पाए। मैं कुछ नहीं कर सकती, लेकिन आप तो इसे रोक सकते हैं।¹⁰⁹ आज के भारतीय समाज में पुरुषों की यौन इच्छाओं का किस प्रकार स्त्रियां शिकार होती हैं, आत्मकथा में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में अभिव्यंजित है। यौन-सम्बन्धों में पुरुष आध्यात्मिक मर्यादा की भी परवाह नहीं करता जिसको समाज में एक भय पैदा करने का बड़ा हथकण्डा के रूप में स्वयं दूसरों के लिए करता रहा है। वह लिखती है— “मैं मुस्तफ़ा से नफरत करती थी, लेकिन फिर भी मैं उसे अपना बनाए रखने की कोशिश कर रही थी। क्या मेरा दिल टूट रहा था, या फिर मेरा अहं चकनाचूर हो रहा था? शदीद दर्द के बीच मैं इसमें फर्क नहीं कर पा रही थी।”¹¹⁰ स्त्री दर्द में कराह रही इससे पुरुष को कुछ लेना देना नहीं वह तो सिर्फ अपनी इच्छाओं की पूर्ति पर ही आमादा है।

समग्रतः स्त्रियों के सामाजिक समानता के अधिकार में जो बातें आड़े आ रही हैं, उनका कलात्मक और बौद्धिक आख्यान समकालीन महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं में पूरी क्षमा से उद्घाटित किया जा रहा है।

‘महिला आत्मकथाओं में स्त्री दृष्टि का परिप्रक्ष्य’ के अन्तर्गत अध्ययन करते हुए यह पाया गया कि भारत की सभी भाषाओं में महिला लेखिकाओं ने अपनी-अपनी आत्मकथाएं बेइंतहा ईमानदारी से लिखी हैं। हिन्दी भाषा में – अमृता प्रीतम, मन्नू भण्डारी, कौसल्या वैसंती, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, पद्मा सचदेव, सुशीला टाकभौरे, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, निर्मला जैन, प्रतिभा अग्रवाल, दिनेश नन्दिनी डालमिया, सुनीता जैन, कृष्णा अग्निहोत्री, कुसुम अंसल आदि स्त्री लेखिकाओं ने अपनी-अपनी आत्मकथाओं में जीवन के भोगे हुए यथार्थ और तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि परिवेश के भीतर स्त्रियों की स्थिति को

शब्दबद्ध किया है। स्त्रीदृष्टि के भीतर स्त्री सम्बंधी पारम्परिक रूढ़ियों, मिथकों एवं संस्कारों को तोड़ने का प्रयास किया गया और नवीन मानवीय व लोकतांत्रिक मूल्यों, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार आदि की मांग की गयी है। महिलाओं की स्थिति व उनके विचारों को तर्क के साथ नीति निर्धारकों के सामने प्रस्तुत की जा रही है ताकि महिलाओं के पक्ष में नीतियाँ, कानून और कार्यक्रम बनाने को उन्हें प्रेरित कर सकें।

आत्मकथाओं के माध्यम से स्त्री ने भी अपने विचारों के द्वारा विसंगतियों – बिडम्बनाओं को समाज के सामने लाने का हौसला दिखाया। विचारों की धार को समाज के समाने लाकर नारी मुक्ति के सपने को सार्थकता का अमली जामा पहना सकती हैं। अपनी आत्मकथाओं में पुरुष आधारित व्यवस्था में स्त्री के सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन की पड़ताल गहनता से करती हैं ? सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति की जटिलता को उधाड़कर वे स्त्री मुक्ति की आवश्यकता को सिद्ध करती हैं। अपनी समस्याओं बेबसी, यंत्रणा को बखूबी दर्शायी हैं और उसका समाधान खोजने का प्रयास भी किया है। इस तरह स्त्री दृष्टि के भीतर किया गया लेखन स्त्री के अस्तित्व, अस्मिता, पहचान एवं अधिकार की पहल की गयी है।

हिन्दी भाषा में अनूदित अन्य स्त्री-आत्मकथाओं की विषयवस्तु वही है जो हिन्दी भाषा की मौलिक आत्मकथाओं का है। कमलादास, अजीत कौर, तहमीना दुर्रानी आदि की आत्मकथाओं में भी स्त्री मुक्ति की आकांक्षा अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार सभी भारतीय भाषाओं की महिला आत्मकथाओं में उनके अस्तित्व, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार प्राप्त की पहल की गयी है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0)लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2000ए पृ० 104
2. स्त्री उपेक्षिता, हिन्द पॉकेट बुक, नई दिल्ली, संस्करण-2004, पृ० 26
3. स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा, संपा० जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, आनन्द प्रकाशन, कलकत्ता, प्रथम संस्करण-2004, पृ० 37
4. स्त्री विमर्श : विविध पहलू, कल्पना वर्मा (संपादक), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2009, पृ० 75
5. वही, पृ० 59
6. देहरि भई विदेश, संपादन राजेन्द्र यादव, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली-2013, पृ० कवर पेज से
7. हिन्दी महिला कथाकारों की आत्मकथाएं : एक विवेचन, दिनेश द्विवेदी, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2015, पृ० 92
8. नई सदी की पहचान : श्रेष्ठ महिला कथाकार, संपा० ममता कालिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण-2009, पृ० IX (भूमिका से)
9. स्त्री विमर्श : विविध पहलू, संपा० कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2009, पृ० 260
10. खरगोश के सींग, प्रभाकर माचवे, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, भाग 100, संख्या 2, पृ० 57
11. उपनिवेश में स्त्री, मुक्ति कामना की दस वार्ताएं, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003, पृ० 9
12. देहरि भई विदेश, संपादक राजेन्द्र यादव, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली-2013, पृ० 18
13. महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना, संपा० वीरेन्द्र सिंह यादव, पैसिफिक पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2012, पृ० 295
14. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009, पृ० 249
15. वही, पृ० 273
16. वही, पृ० 256
17. वही, पृ० 249
18. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2012, पृ० 37
19. वही, पृ० 39
20. वही, पृ० 39
21. वही, पृ० 18
22. वही, पृ० 232
23. वही, पृ० 327

24. वही, पृ० 17
25. वही, पृ० 352
26. हादसे, रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण—2005, पृ० 7
(आत्मकथा के अनेक पाठ)
27. वही, पृ० 15
28. हादसे, रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण—2005,
आवृत्ति—2010, पृ० 7—8, 8—9
29. वही, पृ० 16
30. वही, पृ० 15
31. वही, पृ० 15
32. वही, पृ० 54
33. हिंदी महिला कथाकारों की आत्मकथाएं : एक विवेचन, दिनेश द्विवेदी, अद्वैत प्रकाशन, नई
दिल्ली, प्रथम संस्करण—2015, पृ० 85
34. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तीसरा संस्करण—2015,
पृ० 9 (अपनी बात)
35. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण—2010, पृ० कवर
पेज से
36. वही, पृ० 246
37. वही, पृ० 28
38. वही, पृ० 253
39. वही, पृ० 85
40. वही, पृ० 76
41. वही, पृ० 77
42. वही, पृ० 63
43. वही, पृ० 254
44. वही, पृ० 223
45. वही, पृ० 9
46. वही, पृ० 75
47. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण—2008,
पृ० 7—8
48. वही, पृ० 9
49. वही, पृ० 10
50. हिन्दी महिला कथाकारों की आत्मकथाएं : एक विवेचन, दिनेश द्विवेदी, अद्वैत प्रकाशन,
दिल्ली, संस्करण—2015, पृ० 73
51. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण—2008, पृ० 37
52. वही, पृ० 37

53. हिन्दी महिला कथाकारों की आत्मकथाएं : एक विवेचन, दिनेश द्विवेदी, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2015, पृ० 70
54. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2008, पृ० 82
55. वही, पृ० 169
56. दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2012, पृ० 8 (भूमिका से)
57. वही, पृ० 8
58. वही, पृ० 67
59. वही, पृ०
60. वही, पृ० 75
61. वही, पृ० 75
62. वही, पृ० 7, भूमिका से
63. रसीदी टिकट, अमृता प्रीतम, हिन्द पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण-2002, छठां रिप्रिंट-2011, आवरण के प्रवेश पृष्ठ से
64. वही, पृ० 33
65. वही, पृ० 128
66. वही, पृ० 122
67. वही, पृ० 139
68. वही, पृ० 70
69. वही, पृ० 52
70. वही, पृ० 132
71. वही, पृ० 14
72. वही, पृ० 141
73. पिंजरे की मैना, चन्द्रकिरण सोनरेक्सा, पृ० 117
74. वही, पृ० आत्मकथ्य से
75. इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य : समय, समाज और संवेदना, रवीन्द्रनाथ मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 186
76. पिंजरे की मैना, चन्द्रकिरण सोनरेक्सा, पृ० 380
77. वही, पृ० 415
78. वही, पृ० 415
79. वही, पृ० 167
80. वही, पृ० 248
81. वही, पृ० 221
82. वही, पृ० 279
83. लगता नहीं दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ० 18
84. वही, पृ० भूमिका से

85. हिन्दी महिला कथाकारों की आत्मकथाएं : एक विवेचन, दिनेश द्विवेदी, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2015, पृ० 29
86. देहरि भई विदेश, संपादन राजेन्द्र यादव, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली-2013, पृ० 10
87. कुछ कही कुछ अनकही, शीला झुनझुनवाला, पृ० भूमिका से
88. वही, पृ० 124
89. हिन्दी महिला कथाकारों की आत्मकथाएं : एक विवेचन, दिनेश द्विवेदी, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2015, पृ० 92
90. वही, पृ० 49
91. भविष्य का स्त्री विमर्श, ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2015, पृ० 85
92. हिन्दी महिला कथाकारों की आत्मकथाएं : एक विवेचन, दिनेश द्विवेदी, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2015, पृ० 96
93. बूँद बावड़ी, पदमा सचदेव, पृ० 12
94. मेरी कहानी, कमलादास, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० भूमिका से
95. मेरी कहानी, कमलादास,, पृ० कवर पेज से
96. वही, पृ० 31
97. वही, पृ० 31-32
98. वही, पृ० 167
99. वही, पृ० 167
100. खानाबदोश, अजीत कौर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2010, पृ० 130
101. वही, पृ० 79
102. वही, पृ० 5, भूमिका से
103. वही, पृ० 62
104. वही, पृ० 64
105. वही, पृ० 63
106. मेरे आका, तहमीना दुर्रानी (अनुवाद: मोजेज माइकल), वाली प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण : 2008, पृ० कवर पेज से
107. वही, पृ० समर्पण से
108. वही, समर्पण से
109. वही, पृ० कवर पेज से
110. वही, पृ० 331